ई-पत्रिका
₹ 49/-

▶ **जॉर्जिया मेलोनी**
दरकता तिलिस्म

▶ **रॉकेट फोर्स**
युद्ध का नया व्याकरण

CULT CURRENT

वर्ष: 9 अंक: 3 अप्रैल, 2026

WE MAKE VIEWS

तेल तनाव तबाही

Let's 360°

- Media Consultancy
- Web solution
- Advertising
- Publication
- Languages Services
- Survey & Research
- Branding
- AV Production
- Campaign management
- Event organizer
- PR partner, PR associate
- Content writer & provider
- Media analyst

URJAS MEDIA VENTUE IS PERHAPS THE ONLY CONSULTING FIRM THAT CAN GIVE YOUR ORGANISATION A 360 DEGREE MEDIA BUSINESS GROWTH CONSULTING THROUGH IT'S 360 CAPABILITIES. FOR US, CONSULTING DOES NOT ONLY MEAN MECHANICAL COST REDUCTION THROUGH BETTER IT APPLICATIONS, WE FIND OUT WHAT YOUR ORGANISATION REALY NEEDS AND GIVE YOU AN INTELLECTUAL SOLUTION THAT HELP YOU REDUCE COST AS WELL AS HELPS YOURS BUSINESS GROW AND BEAT THE COMPETITION.

NOW!! OUR CONSULTANT WILL GET BACK TO YOU IN 24 HOURS AND PUT YOU IN TO THE HIGH GROWTH PATH

URJAS MEDIA
VENTURE

BEAT THE COMPETITION

www.urjasmedia.com

SMS 'BUSINESS GROWTH'
TO +91-8826-24-5305 OR
E-MAIL info@urjasmedia.com

गुमनाम नायिका

हौसलों की जीत: इरा सिंघल की अदम्य उड़ान

इरा सिंघल

इरा सिंघल की कहानी सिर्फ एक अफसर बनने की नहीं, बल्कि हर उस बाधा को चुनौती देने की है जिसे समाज 'सीमा' मान लेता है। मेरठ की रहने वाली इरा बचपन से ही पढ़ाई में तेज थीं, लेकिन स्कोलियोसिस जैसी शारीरिक चुनौती उनके रास्ते में बार-बार खड़ी की गई। जब लोग उनकी क्षमता पर सवाल उठाते रहे, तब इरा ने अपने सपनों पर विश्वास बनाए रखा। उन्होंने यूपीएससी परीक्षा न केवल पास की, बल्कि तीन बार सफलता हासिल की। शुरुआती दौर में आईआरएस में चयन के बावजूद, 62% दिव्यांगता के कारण उन्हें ज्वाइन करने से रोक दिया गया। लेकिन इरा हार मानने वालों में नहीं थीं। उन्होंने कानूनी लड़ाई लड़ी, न्याय पाया और फिर अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ीं। 2014 में उन्होंने यूपीएससी टॉप कर इतिहास रच दिया—देश की पहली दिव्यांग महिला टॉपर बनकर। आज वह सिर्फ एक आईएएस अधिकारी नहीं, बल्कि उस जज्बे का प्रतीक हैं जो कहता है— **'सीमाएं शरीर में नहीं, सोच में होती हैं।'** ●

संपादकीय

राष्ट्रीय संपादक
संजय श्रीवास्तव

संपादक
श्रीराजेश

प्रबंध संपादक
सच्चिदानंद पाण्डेय

रोमिंग संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

राजनीतिक संपादक
अंशुमान त्रिपाठी

मेट्रो संपादक
शक्ति प्रकाश श्रीवास्तव
डॉ. रुद्र नारायण

अंतर्राष्ट्रीय संपादक
श्रीश पाठक

कारपोरेट संपादक
गगन बत्रा

समन्वय संपादक
सतीश चंद्र

डिजीटल संपादक
जलज श्रीवास्तव

सहायक संपादक
संदीप कुमार

उप संपादक
मनोज कुमार
संतु दास

साहित्य संपादक
अनवर हुसैन

कला संपादक
जया वर्मा

वेब एवं आईटी विशेषज्ञ
अनुज कुमार सिंह

फोटो संपादक
विवेक पाण्डेय

विशेष संवाददाता
कमलेश झा
विकास गुप्ता

संवाददाता
संदीप सिंह
अनिरुद्ध यादव

ब्यूरो प्रमुख (अंतर्राष्ट्रीय)
अकुल बत्रा (अमेरिका)
सी.शिवरतन (नीदरलैंड)
जी. वर्मा(लंदन)
डॉ. मो. फहीम अकबर (पाकिस्तान)
ए. असगरजादेह (ईरान)
डॉ. निक सेरी (मलेशिया)

ब्यूरो प्रमुख (राष्ट्रीय)
राकेश नरवाल (नई दिल्ली)
संजय कुमार सिंह (लखनऊ)
कैप्टन सुधीर सिन्हा (रांची)
निमेष शुक्ल (पटना)
नागेन्द्र सिंह (कोलकाता)
राकेश रंजन (गुवाहाटी)

विपणन
सत्यजीत चौधरी
महाप्रबंधक

ऑनलाइन प्रसार
सृजीत डे

वर्षः 9 अंकः 3 अप्रैल, 2026

Follow us:
fb.com/cultcurrent @Cult_Current cultcurrent@gmail.com

URJAS MEDIA VENTURE
Head office: Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109, INDIA, Tel: +91 6289-26-2363
Corporate Office: 14601, Belaire Blvd, Houston, Texas 77083 USA Tel: +1 (832) 670-9074
Web: http://cultcurrent.in

Cult Current is a monthly e-magazine published by Urjas Media Ventures from Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109.
Editor: Srirajesh

Disclaimer: All editorial and non-editorial positions in the e-magazine are honorary. The publisher and editorial board are not obligated to agree with all the views expressed in the articles featured in this e-magazine. Cult Current upholds a commitment to supporting all religions, human rights, nationalist ideology, democracy, and moral values.

CONTENT

COVER STORY

30

तेल तनाव तबाही

12 त्रिकोणीय संकट में ड्रैगन

16 फीके पड़ते महात्मा गांधी

20 जल कूटनीति

रसोई का संकट	24
ढला लाल साया	28
डेटा, धातु और दबदबा	48
जॉर्जिया मेलोनी दरकता तिलिस्म	52
एक दूसरे जलमरूमध्य की दास्तां	54
दो पाटो में पाकिस्तान	56
बंगाल का रण: लाभ Vs ललकार.	60
सस्ता एआई बड़ा असर	64
NATO शक्ति या भ्रम?	68
युद्ध का नया व्याकरण	72

76

कृति का गेम चेंज!

हीरोइन या 'लेडी बॉस'

Small talk

कियारा-नॉर्थ से साउथ तक कब्जा!

बॉलीवुड की खूबसूरत और तेजी से उभरती स्टार कियारा आडवाणी अब सिर्फ हिंदी फिल्मों तक सीमित रहने के मूड में नहीं हैं। इंडस्ट्री में जोरदार चर्चा है कि कियारा ने साउथ के बड़े प्रोजेक्ट्स पर भी दांव लगाना शुरू कर दिया है- और वो भी पूरी तैयारी के साथ। कियारा अब ऐसे रोल चुन रही हैं, जो उन्हें 'पैन-इंडिया स्टार' बना सकें। बड़े डायरेक्टर्स, मल्टी-लैंग्वेज रिलीज़ और हाई-विजिबिलिटी प्रोजेक्ट्स—सब कुछ उनके नए गेम प्लान का हिस्सा है।, कियारा अब सिर्फ हिट फिल्म नहीं, ऑल-इंडिया पहचान चाहती हैं। दिलचस्प बात यह है कि उनका यह कदम उन्हें उस लीग में ले जा सकता है, जहां स्टारडम की सीमाएं भाषा से नहीं, स्क्रीन प्रेजेंस से तय होती हैं।●

2026 में तहलका मचाने वाली खोजें

सूर्य-संवर्धित सफलता: नासा का पार्कर सोलर प्रोब सम्मानित!

नासा के पार्कर सोलर प्रोब मिशन ने एक और बड़ी उपलब्धि हासिल की है। नासा के इंजीनियरों और वैज्ञानिकों की टीम, जिसमें मैरीलैंड के लॉरेल स्थित जॉन्स हॉपकिन्स एप्लाइड फिजिक्स लेबोरेटरी और अमेरिका के 40 से अधिक सहयोगी संगठनों के विशेषज्ञ शामिल हैं, को प्रतिष्ठित 2024 रॉबर्ट जे. कॉलियर ट्रॉफी से सम्मानित किया गया है। यह सम्मान नेशनल एरोनॉटिक एसोसिएशन द्वारा हर वर्ष दिया जाता है और इसे एयरोस्पेस क्षेत्र में सबसे उत्कृष्ट उपलब्धियों के लिए माना जाता है।●

अब टिकाऊ उर्वरक से होगी उत्सर्जन में कटौती!

बार्सिलोना के शोधकर्ताओं ने एक अनोखा और पर्यावरण के अनुकूल समाधान खोज निकाला है—मानव मूत्र को उर्वरक के रूप में पुनर्चक्रित करना। इस पद्धति से कार्बन उत्सर्जन और जल उपयोग में भारी कमी आई है, जिससे शहरी खेती को अधिक टिकाऊ बनाने में मदद मिली है। शोधकर्ताओं ने 'पीली जल' (मूत्र) से नाइट्रोजन की पुनः प्राप्ति को पर्यावरण के लिए बेहद लाभकारी पाया है।●

ड्रोन अब सुन सकते हैं पानी के नीचे के संदेश

शोधकर्ताओं की एक टीम ने ऐसा उपकरण तैयार किया है जो पानी के नीचे से आने वाले ध्वनिक संदेशों (सोनार) को सुनने के लिए रडार तकनीक का उपयोग करता है। यह उपकरण पानी की सतह पर उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म कंपन को डिकोड करके उन संदेशों को पकड़ लेता है। सिद्धांत रूप में, इस तकनीक का उपयोग पानी के नीचे स्थित ट्रांसमीटर की स्थिति का मोटे तौर पर पता लगाने के लिए भी किया जा सकता है।●

डीएनए माइक्रोस्कोपी: उंडी नक्शों का अनावरण!

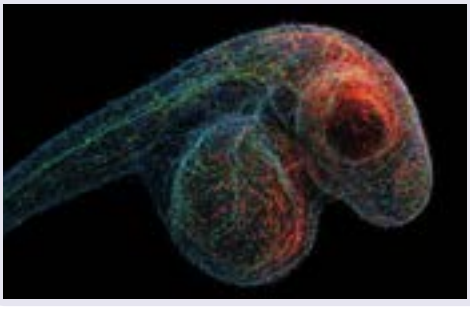

पारंपरिक जेनेटिक सीक्वेंसिंग से किसी नमूने, जैसे कि एक ऊतक का टुकड़ा या रक्त की बूंद में मौजूद आनुवंशिक सामग्री के बारे में बहुत कुछ पता लगाया जा सकता है। लेकिन यह यह नहीं बताती कि उस नमूने के भीतर विशेष आनुवंशिक अनुक्रम कहां स्थित हैं या वे आस-पास के जीन और अणुओं से कैसे संबंधित हैं।●

डस्टर की वापसी—SUV बाजार में फिर गरजेगा पुराना शेर!

Renault Duster एक बार फिर भारतीय सड़कों पर लौटने को तैयार है—और इस बार अंदाज़ पहले से ज्यादा दमदार है। मार्च 2026 में पेश हुआ नया डस्टर पूरी तरह नए डिजाइन, अपडेटेड फीचर्स और संभावित हाइब्रिड टेक्नोलॉजी के साथ आया है। कभी मिड-साइज SUV सेगमेंट का बादशाह रहा यह मॉडल अब दोबारा उसी ताज पर नजर गड़ाए हुए है। कंपनी का फोकस स्टाइल, परफॉर्मेंस और माइलेज के बैलेंस पर है। साफ है—डस्टर की यह वापसी सिर्फ लॉन्च नहीं, बल्कि बाजार में नई टक्कर की शुरुआत है।●

नियुक्ति-इस्तीफा

डॉ. सी.वी. आनंद बोस
राज्यपाल, पश्चिम बंगाल

मार्च 2026 में डॉ. सी.वी. आनंद बोस ने पश्चिम बंगाल के राज्यपाल पद से इस्तीफा दिया, जिसे राष्ट्रपति ने स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही कई राज्यों में राज्यपालों के स्तर पर व्यापक प्रशासनिक फेरबदल की प्रक्रिया शुरू हुई।

कोम्पेला वेंकट रमणा मूर्ति , पूर्णकालिक
सदस्य, सेबी

मार्च माह में कोम्पेला वेंकट रमणा मूर्ति को भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (SEBI) का पूर्णकालिक सदस्य नियुक्त किया गया। रक्षा लेखा क्षेत्र में उनके व्यापक अनुभव के आधार पर, वे पूंजी बाजार नियमन और वित्तीय निगरानी को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

उन्होंने कहा

डोनाल्ड ट्रंप
राष्ट्रपति, संयुक्त राज्य अमेरिका

"अमेरिका अपने सहयोगियों के साथ मिलकर वैश्विक स्थिरता बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध है। किसी भी आक्रामकता का जवाब सामूहिक ताकत से दिया जाएगा।"

एमैनुअल मैक्रोन
राष्ट्रपति, फ्रांस

"यूरोप को अपनी सुरक्षा के लिए अधिक जिम्मेदारी उठानी होगी। हम एक मजबूत और आत्मनिर्भर रक्षा ढांचा बनाने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।"

श्रद्धांजलि

डॉ. भीम राव अंबेडकर
(14/04/1891-06/12/1956)

डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर, जिन्हें अक्सर भारतीय संविधान के जनक के रूप में सराहा जाता है, एक अद्वितीय समाज सुधारक, न्यायविद्, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ थे, जिनकी समानता और न्याय की अथक खोज ने आधुनिक भारत को अपरिवर्तनीय रूप से आकार दिया। 1891 में हाशिए पर धकेली गई महार जाति में जन्मे, अंबेडकर ने जातिगत भेदभाव की क्रूर वास्तविकताओं का प्रत्यक्ष अनुभव किया, जिसने सामाजिक अन्याय के खिलाफ उनके आजीवन संघर्ष को बढ़ावा दिया। एक प्रतिभाशाली विद्वान, उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की, जिससे वे अपने समय के सबसे उच्च शिक्षित भारतीयों में से एक बन गए।

अंबेडकर ने अपना जीवन दलितों (जिन्हें पहले 'अछूत' के रूप में जाना जाता था) के अधिकारों की वकालत करने, गहरी जड़ें जमा चुकी जाति व्यवस्था को चुनौती देने और शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक उनकी पहुंच की वकालत करने के लिए समर्पित कर दिया। उनका मानना था कि सच्ची समानता केवल कानूनी और संवैधानिक सुधारों के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है। इस दृढ़ विश्वास ने उन्हें भारत के संविधान के मसौदे में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया, जहाँ उन्होंने जाति, पंथ या लिंग की परवाह किए बिना सभी नागरिकों के लिए सामाजिक न्याय, समानता और मौलिक अधिकारों के सिद्धांतों को स्थापित किया।

अपने संवैधानिक योगदानों के अलावा, अंबेडकर एक दूरदर्शी नेता थे जिन्होंने दलितों को सशक्त बनाने के उद्देश्य से कई संस्थानों और संगठनों की स्थापना की। उन्होंने शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता के उपकरण के रूप में बढ़ावा दिया और उन्हें अपने अधिकारों और गरिमा पर जोर देने के लिए प्रोत्साहित किया। 1956 में बौद्ध धर्म में उनका धर्मांतरण, उनके हजारों अनुयायियों के साथ, हिंदू धर्म के भीतर भेदभावपूर्ण प्रथाओं के खिलाफ एक शक्तिशाली बयान था। डॉ. अंबेडकर की विरासत उत्पीड़न और असमानता के खिलाफ अपनी लड़ाई में लाखों लोगों को प्रेरित करती है, जिससे भारत के सबसे प्रभावशाली और परिवर्तनकारी हस्तियों में उनका स्थान मजबूत होता है। ●

लाल सागर में उभरता समुद्री युद्ध

लाल सागर आज केवल जलमार्ग नहीं, बल्कि वैश्विक अर्थव्यवस्था की धड़कन बन चुका है—और इसी धड़कन पर अब अस्थिरता की उंगलियाँ कसती जा रही हैं। यमन के हूती विद्रोहियों द्वारा व्यापारिक जहाजों पर हमले ने इस मार्ग को युद्धक्षेत्र में बदल दिया है। विश्व व्यापार का बड़ा हिस्सा यहीं से गुजरता है, और अब जहाजों को अफ्रीका का लंबा चक्कर काटना पड़ रहा है—जिससे लागत, समय और अनिश्चितता तीनों बढ़ गए हैं। यह संकट केवल क्षेत्रीय नहीं, बल्कि उस नई विश्व व्यवस्था का संकेत है, जहाँ गैर-राज्य तत्व भी वैश्विक संतुलन को चुनौती देने की क्षमता रखते हैं। प्रश्न यह है—क्या महासत्ताएँ इस उभरते समुद्री अराजकता को नियंत्रित कर पाएँगी, या यह लाल सागर आने वाले समय में वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का स्थायी संकट बन जाएगा? ●

चीन की आर्थिक सुस्ती का वैश्विक बाजारों पर पड़ने लगा है असर

चीन की अर्थव्यवस्था में सुस्ती अब केवल घरेलू चिंता नहीं, बल्कि वैश्विक बाजारों के लिए भी खतरा बनती जा रही है। रियल एस्टेट संकट, घटती मांग और निवेश में कमी ने विकास दर को प्रभावित किया है। चूंकि चीन वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का केंद्र है, इसलिए उसकी आर्थिक कमजोरी दुनिया भर के व्यापार, निवेश और विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाल सकती है। ●

आर्कटिक क्षेत्र में बढ़ रही महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा

आर्कटिक क्षेत्र अब जलवायु परिवर्तन के कारण खुलते संसाधनों की नई दौड़ का केंद्र बन गया है। रूस, अमेरिका और चीन इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति मजबूत कर रहे हैं। ऊर्जा, खनिज और नए समुद्री मार्गों पर नियंत्रण की यह होड़ आने वाले समय में टकराव का कारण बन सकती है। आर्कटिक अब शांति का क्षेत्र नहीं, बल्कि संभावित भू-राजनीतिक संघर्ष का नया मंच बन रहा है। ●

अफ्रीका: वैश्विक शक्तियों के लिए उभरता प्रभाव क्षेत्र

अफ्रीका के कई देशों में लगातार हो रहे सैन्य तख्तापलट ने पूरे महाद्वीप को अस्थिरता की ओर धकेल दिया है। पारंपरिक पश्चिमी प्रभाव कमजोर पड़ रहा है, जबकि रूस और चीन अपनी उपस्थिति बढ़ा रहे हैं। सुरक्षा, संसाधन और रणनीतिक पहुंच को लेकर यह क्षेत्र नई प्रतिस्पर्धा का केंद्र बनता जा रहा है। स्थानीय असंतोष, आर्थिक संकट और कमजोर शासन ने इन परिवर्तनों को और तेज कर दिया है। अफ्रीका अब केवल विकास का प्रश्न नहीं, बल्कि वैश्विक शक्ति संघर्ष का अगला मैदान बन चुका है। ●

ईरान-इजरायल तनाव एवं व्यापक क्षेत्रीय संघर्ष की आशंका

ईरान और इजरायल के बीच बढ़ता तनाव अब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष टकराव की सीमा तक पहुंच चुका है। प्रॉक्सी युद्धों, साइबर हमलों और सैन्य तैयारी ने पूरे पश्चिम एशिया को अस्थिर बना दिया है। यदि यह तनाव खुला संघर्ष बनता है, तो इसका प्रभाव ऊर्जा बाजार और वैश्विक सुरक्षा पर व्यापक रूप से पड़ेगा, जिससे एक बड़े क्षेत्रीय युद्ध की आशंका बढ़ रही है। ●

यूरोप में ऊर्जा असुरक्षा का बढ़ता संकट

रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद यूरोप ने ऊर्जा के नए स्रोत तलाश लिए हैं, लेकिन स्थिरता अभी भी दूर है। गैस और तेल की ऊँची कीमतें, वैकल्पिक आपूर्ति की अनिश्चितता और हरित ऊर्जा की धीमी प्रगति ने यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं पर दबाव बढ़ा दिया है। अमेरिका और मध्य पूर्व पर बढ़ती निर्भरता एक नई रणनीतिक चुनौती बन रही है। यह स्थिति दर्शाती है कि ऊर्जा केवल संसाधन नहीं, बल्कि राजनीतिक हथियार बन चुकी है। सवाल यह है कि क्या यूरोप ऊर्जा आत्मनिर्भरता हासिल कर पाएगा? ●

ताइवान जलडमरूमध्य में बढ़ती सैन्य हलचल व तकनीकी वर्चस्व की लड़ाई

ताइवान जलडमरूमध्य एक बार फिर वैश्विक भू-राजनीति का वह उफनता चौराहा बनता जा रहा है, जहां समुद्र की लहरों से अधिक शक्ति संतुलन की तरंगें टकरा रही हैं। चीन की आक्रामक सैन्य कवायदें—युद्धपोतों की आवाजाही, हवाई घुसपैठ और घेराबंदी जैसे अभ्यास—अब केवल शक्ति प्रदर्शन नहीं, बल्कि एक स्पष्ट रणनीतिक संदेश हैं। इसके समानांतर, अमेरिका और उसके सहयोगियों की बढ़ती सैन्य उपस्थिति इस क्षेत्र को एक अदृश्य 'शीत युद्ध' के सक्रिय मंच में बदल रही है। यह संघर्ष केवल सीमाओं या संप्रभुता का प्रश्न नहीं है; यह उस तकनीकी साम्राज्य के नियंत्रण की लड़ाई है, जिसकी धुरी ताइवान में स्थित है। वैश्विक सेमीकंडक्टर उत्पादन का बड़ा हिस्सा यहीं से संचालित होता है—वह सूक्ष्म चिप, जिस पर आधुनिक अर्थव्यवस्था, कृत्रिम मेधा, रक्षा प्रणाली और डिजिटल भविष्य टिका है। ●

अमेरिका-चीन के बीच डिजिटल वर्चस्व की नई जंग

अमेरिका और चीन के बीच चल रहा तकनीकी संघर्ष अब खुले आर्थिक युद्ध का रूप लेता जा रहा है। सेमीकंडक्टर, कृत्रिम मेधा और 5G जैसी तकनीकों पर नियंत्रण को लेकर दोनों देशों ने निर्यात प्रतिबंध और निवेश सीमाएँ कड़ी कर दी हैं। यह प्रतिस्पर्धा केवल व्यापार तक सीमित नहीं, बल्कि भविष्य की शक्ति संरचना को तय करने वाली निर्णायक लड़ाई है। इससे वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाएं टूट रही हैं और देशों को पक्ष चुनने पर मजबूर होना पड़ रहा है। ●

रूस-यूक्रेन युद्ध में पश्चिमी देशों की थकान और बदलता शक्ति संतुलन

रूस-यूक्रेन युद्ध अब केवल मोर्चों पर नहीं, बल्कि पश्चिमी देशों की राजनीति में भी लड़ा जा रहा है। दो वर्षों के बाद यह स्पष्ट दिखने लगा है कि अमेरिका और यूरोप के भीतर इस युद्ध को लेकर उत्साह की जगह थकान ने ले ली है। आर्थिक दबाव, चुनावी राजनीति और अन्य वैश्विक संकटों ने इस समर्थन को धीरे-धीरे सीमित कर दिया है। यूक्रेन के लिए यह केवल सैन्य चुनौती नहीं, बल्कि कूटनीतिक अकेलेपन का संकेत भी है। यदि यह थकान गहराती है, तो युद्ध का संतुलन रूस की ओर झुक सकता है—और इससे अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में शक्ति संतुलन का नया अध्याय शुरू होगा। ●

चुनावी रण में ममता बनर्जी का दिख रहा आक्रामक तेवर

पश्चिम बंगाल की राजनीति मार्च 2026 में उस उबाल पर पहुँच गई है, जहाँ सत्ता और संघर्ष के बीच की रेखाएँ धुंधली होती जा रही हैं। मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने चुनावी माहौल के बीच चुनाव आयोग और केंद्र सरकार पर तीखे आरोप लगाए हैं—उन्होंने मतदाता सूची में कथित गड़बड़ियों और नाम हटाए जाने को 'लोकतंत्र की हत्या' तक करार दिया। इसके साथ ही उन्होंने इसे एक सुनियोजित राजनीतिक षड्यंत्र बताते हुए विशेष वर्गों, खासकर महिलाओं को निशाना बनाए जाने का आरोप लगाया है। यह टकराव केवल आरोप-प्रत्यारोप नहीं, बल्कि उस बड़े संघर्ष का संकेत है, जिसमें चुनावी प्रक्रिया की निष्पक्षता ही केंद्र में आ गई है। बंगाल का यह सियासी तापमान अब केवल राज्य तक सीमित नहीं—यह राष्ट्रीय राजनीति में भी लोकतांत्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता पर एक बड़ा प्रश्नचिह्न बनता जा रहा है। ●

कृषि सुधारों को लेकर शुरू हुई नई बहस

मार्च में कृषि सुधारों को लेकर एक बार फिर बहस तेज हो गई है। सरकार जहाँ कृषि क्षेत्र में निवेश और आधुनिक तकनीकों को बढ़ावा देने की बात कर रही है, वहीं किसान संगठन न्यूनतम समर्थन मूल्य और बाजार नियंत्रण को लेकर आशंकित हैं। यह टकराव केवल नीतियों का नहीं, बल्कि विश्वास का भी संकट है। यदि संवाद का रास्ता मजबूत नहीं हुआ, तो यह असंतोष एक बार फिर व्यापक आंदोलन का रूप ले सकता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था और राजनीतिक संतुलन दोनों प्रभावित होंगे। ●

बुनियादी ढांचे के विस्तार से विस्थापन का बढ़ता संकट

देश में तेज़ी से बढ़ते बुनियादी ढांचा परियोजनाओं ने विकास को नई गति दी है, लेकिन इसके साथ विस्थापन और पुनर्वास की समस्या भी उभर रही है। नई रेल लाइनों, एक्सप्रेसवे और औद्योगिक परियोजनाओं के कारण हजारों परिवार प्रभावित हो रहे हैं। विकास और मानवीय संवेदनाओं के बीच यह संतुलन एक बड़ी चुनौती बन चुका है। यदि पुनर्वास नीतियाँ प्रभावी नहीं रहीं, तो यह विकास मॉडल सामाजिक असंतोष को जन्म दे सकता है। ●

शिक्षा प्रणाली में बदलाव: पहुंच की चुनौती

नई शिक्षा नीतियों के क्रियान्वयन के बीच भारत की शिक्षा प्रणाली एक संक्रमण काल से गुजर रही है। डिजिटल शिक्षा, कौशल आधारित पाठ्यक्रम और निजी निवेश को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन गुणवत्ता और समान अवसर का प्रश्न अभी भी अनुत्तरित है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच बढ़ती खाई इस चुनौती को और जटिल बना रही है। यह स्पष्ट है कि शिक्षा केवल सुधार का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और भविष्य निर्माण का आधार है। ●

सरकारी निवेश के बावजूद स्वास्थ व्यवस्था पर दबाव जस का तस

स्वास्थ्य क्षेत्र में सरकार के निवेश और योजनाओं के बावजूद सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था पर दबाव कम नहीं हुआ है। मार्च में कई राज्यों से अस्पतालों में भीड़, संसाधनों की कमी और चिकित्सकीय स्टाफ की कमी की खबरें सामने आई हैं। निजी और सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के बीच बढ़ती असमानता ने इस संकट को और गहरा किया है। यह स्थिति संकेत देती है कि केवल योजनाएँ पर्याप्त नहीं—प्रभावी क्रियान्वयन और संसाधन संतुलन भी उतना ही आवश्यक है। ●

महानगरों में जीवन गुणवत्ता का गिरता स्तर

भारत में तेजी से बढ़ता शहरीकरण आज एक ऐसे दोराहे पर खड़ा है, जहाँ विकास की चमक और जीवन की वास्तविकता आमने-सामने खड़ी दिखाई देती हैं। महानगर आर्थिक गतिविधियों के केंद्र बनते जा रहे हैं, लेकिन इसी के साथ वहाँ का जीवन धीरे-धीरे बोझिल होता जा रहा है। ट्रैफिक जाम अब केवल असुविधा नहीं, बल्कि समय और उत्पादकता की क्षति का प्रतीक बन चुका है; प्रदूषण साँसों में घुलती हुई एक अदृश्य आपदा है; और आवास संकट ने शहरों को ऊँची इमारतों और सिकुड़ते जीवन में बाँट दिया है। ●

डिजिटल भारत के विस्तार के साथ डेटा सुरक्षा और निजता पर गहराता नया संकट

भारत में डिजिटल अवसंरचना का तीव्र विस्तार एक नई क्रांति का संकेत देता है—जहाँ शासन, बाजार और समाज एक अदृश्य नेटवर्क में जुड़ते जा रहे हैं। आधार, डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन सेवाओं ने जीवन को सरल और त्वरित अवश्य बनाया है, पर इसी सहजता के पीछे एक जटिल असुरक्षा भी जन्म ले रही है। मार्च 2026 में सामने आए डेटा लीक और साइबर हमलों की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया कि हम तकनीकी प्रगति की गति तो पकड़ चुके हैं, पर उसकी सुरक्षा की छाया अभी भी कमजोर है। यह संकट केवल आंकड़ों की चोरी का नहीं, बल्कि पहचान के क्षरण का है। नागरिक अब केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि 'डाटा' में परिवर्तित हो चुका है—एक ऐसी इकाई, जिसे संग्रहित, विश्लेषित और कभी-कभी नियंत्रित भी किया जा सकता है। सरकार ने नियामक ढांचे और कानूनों के माध्यम से इस चुनौती का सामना करने की कोशिश अवश्य की है, लेकिन प्रश्न यह है कि क्या ये उपाय उस तेजी से बदलती तकनीकी दुनिया के सामने पर्याप्त हैं, जहाँ खतरे हर दिन नए रूप में सामने आते हैं? ●

डिजिटल अर्थव्यवस्था के विस्तार से रोजगार संरचना में बड़ा बदलाव

डिजिटल अर्थव्यवस्था के तेजी से विस्तार ने रोजगार के स्वरूप को बदलना शुरू कर दिया है। गिग इकॉनमी, फ्रीलांसिंग और ऑटोमेशन के बढ़ते प्रभाव ने पारंपरिक नौकरियों को चुनौती दी है। यह परिवर्तन अवसरों के साथ-साथ असुरक्षा भी लेकर आया है। श्रम कानून, सामाजिक सुरक्षा और कौशल विकास जैसे मुद्दे अब केंद्र में आ गए हैं। यह स्पष्ट है कि रोजगार का भविष्य केवल उपलब्धता का नहीं, बल्कि स्थिरता और गरिमा का भी प्रश्न होगा। ●

जलवायु संकट से बदलता मौसम का मिजाज

देश के कई हिस्सों में मार्च में असामान्य मौसम की घटनाओं—कहीं अचानक बाढ़ तो कहीं भीषण गर्मी—ने जलवायु संकट की गंभीरता को और स्पष्ट कर दिया है। यह केवल प्राकृतिक असंतुलन नहीं, बल्कि विकास के उस मॉडल पर प्रश्नचिन्ह है, जिसने पर्यावरण को लंबे समय तक उपेक्षित रखा। शहरों का अनियंत्रित विस्तार, वन क्षेत्रों का क्षरण और संसाधनों का अत्यधिक दोहन इस संकट को और गहरा कर रहे हैं। इसका प्रभाव केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं, बल्कि कृषि, अर्थव्यवस्था और जनजीवन पर भी पड़ रहा है। यह समय चेतावनी का है—क्या भारत अपने विकास और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित कर पाएगा, या यह संकट आने वाले वर्षों में और विकराल रूप लेगा? मौसम की मार सबसे अधिक उन क्षेत्रों में ज्यादा पड़ी है, जो पहले से ही विकास की रोशनी से अभी तक अछूते हैं। ●

श्रीराजेश, संपादक

हार्मूज में हहाकार

हार्मूज जलडमरूमध्य में बढ़ता तनाव वैश्विक ऊर्जा प्रवाह को जकड़ने लगा है, और इसका सबसे तीखा असर भारत जैसी आयात-निर्भर अर्थव्यवस्थाओं पर दिख रहा है। आपूर्ति, कीमत और कूटनीति के इस त्रिकोण में ऊर्जा संकट अब वास्तविक खतरे का रूप ले चुका है।

दक्षिण एशिया के क्षितिज पर भू-राजनीति की काली छाया इस कदर घनीभूत हो गई है कि वह भारत की आर्थिक धमनियों को जमने पर मजबूर कर रही है। हॉर्मूज जलडमरूमध्य—विश्व की अर्थव्यवस्था की मुख्य 'महाधमनी'—आज बारूद के ढेर पर खड़ा है। इससे होकर गुजरने वाला हर टैंकर वैश्विक बाजार का रक्तचाप तय करता है। ईरान द्वारा इस संकरे मार्ग पर अपनी पकड़ को जिस तरह कसा गया है, वह किसी भी क्षण वैश्विक ऊर्जा प्रवाह को 'हृदयाघात' दे सकता है। भले ही कुछ मित्र देशों को फिलहाल सीमित राहत के संकेत मिले हों, लेकिन यह बोतल में कैद अग्नि से धधकते टैंकर दुनिया के लिए कहीं अधिक विनाशकारी है।

भारत अपनी कच्चे तेल की भूख का 85 प्रतिशत हिस्सा आयात के जरिए पूरा करता है, जिसमें पश्चिम एशिया की हिस्सेदारी निर्णायक है। हॉर्मूज में उठने वाली कोई भी लहर भारत के तटों पर सुनामी बनकर टकराती है। तेल की कीमतों में हर उछाल केवल बाजार की प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि उस 'जोखिम प्रीमियम' का प्रतिबिंब है, जिसका भार अंततः भारतीय उपभोक्ता उठाता है। जैसे ही वैश्विक पटल पर अनिश्चितता बढ़ती है, भारत का चालू खाता घाटा, मुद्रा का अवमूल्यन और महंगाई का दानव अर्थव्यवस्था को जकड़ने लगते हैं।

प्रधानमंत्री द्वारा बुलाई गई आपातकालीन बैठक इस यथार्थ का स्वीकारोक्ति पत्र है कि ऊर्जा संकट अब केवल विदेश मंत्रालय की फाइलों का विषय नहीं रहा - यह आंतरिक आर्थिक स्थिरता का सबसे बड़ा शत्रु बन चुका है। आपूर्ति श्रृंखला का विविधीकरण, रणनीतिक तेल भंडारों का शंखनाद और वैकल्पिक मार्गों की खोज अब कोई नीतिगत विकल्प नहीं, बल्कि राष्ट्र की सुरक्षा का अनिवार्य अध्याय है।

विश्लेषकों की दृष्टि में, यह समस्या मात्र तेल की उपलब्धता की नहीं है, बल्कि उस अदृश्य 'बीमा लागत' की है, जो संकट के साथ जुड़ी है। जब किसी समुद्री मार्ग को 'उच्च जोखिम क्षेत्र' घोषित किया जाता है, तो जहाजों के बीमा प्रीमियम में लगी आग शिपिंग कंपनियों को उस रास्ते से दूर धकेल देती है। इससे तेल की आपूर्ति न केवल महंगी हो जाती है, बल्कि समय की पाबंदी भी छिन्न-भिन्न हो जाती है। समय पर न पहुंचता हुआ ईंधन, पहुंच चुके ईंधन से भी अधिक घातक सिद्ध होता है।

ईरान द्वारा भारत जैसे देशों को दी गई छूट एक कूटनीतिक संकेत तो है, लेकिन यह रेत पर लिखी इबारत जैसा है। अमेरिका, इजरायल और ईरान के बीच की यह युद्ध यदि किसी 'बड़े युद्ध' में परिणत हुई, तो यह छूट कब राख हो जाएगी, कहना कठिन है। संघर्ष का विस्तार पूरे क्षेत्र को एक

ऐसे ज्वालामुखी में बदल देगा जिसके लावे से न केवल अर्थव्यवस्थाएं, बल्कि पूरी भू-राजनीतिक संरचना झुलस जाएगी।

भारत के लिए यह संकट केवल पेट्रोल पंपों तक सीमित नहीं रहने वाला। परिवहन लागत का बढ़ना, खाद्य आपूर्ति का बाधित होना, उर्वरक उत्पादन का ठप पड़ना और औद्योगिक धड़कों का धीमा होना—ये सब इस संकट की अंतहीन कड़ियां हैं। रसोई गैस की उपलब्धता में आई कमी सीधे तौर पर सामाजिक असंतोष की चिंगारी बन सकती है।

ऐसे में भारत के पास तीन स्पष्ट विकल्प हैं। पहला, आपूर्ति स्रोतों का त्वरित विविधीकरण—जहां अफ्रीका, अमेरिका और रूस जैसे विकल्पों को अब महज कागजी न रखकर हकीकत में बदलना होगा। दूसरा, अपने रणनीतिक पेट्रोलियम भंडारों का विवेकपूर्ण उपयोग, ताकि वैश्विक झटकों को सहने के लिए हमारे पास एक मजबूत 'बफर' हो। और तीसरा, नवीकरणीय ऊर्जा और वैकल्पिक ईंधनों की ओर एक तीव्र संक्रमण। अब वह समय लद चुका है, जब हम केवल अगले महीने की कीमतों पर नजर रखकर अपनी नीति तय कर सकते थे।

निष्कर्षतः, हॉर्मूज का यह संकट महज एक क्षेत्रीय टकराव नहीं है, बल्कि उस वैश्विक ऊर्जा तंत्र की नाजुकता का संकेत है, जिस पर भारत जैसी अर्थव्यवस्थाएं टिकी हैं। यह समय प्रतिक्रिया देने का नहीं, बल्कि रणनीतिक पुनर्संतुलन का है। ऊर्जा सुरक्षा को राष्ट्रीय सुरक्षा के केंद्र में रखकर हमें वे कड़े और दूरगामी निर्णय लेने होंगे, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक 'ऊर्जा-सुरक्षित' राष्ट्र की नींव रखें। अन्यथा, इतिहास हमें ऐसे दौर के रूप में याद रखेगा, जहां हमने अपनी प्रगति को एक जलडमरूमध्य के बहते हुए तेल पर गिरवी रख दिया था। हमें ऊर्जा की आत्मनिर्भरता को केवल एक सरकारी नारा नहीं, अपना सबसे बड़ा सामरिक लक्ष्य बनाना होगा।

srirajesh.journalist @srirajesh editor@cultcurrent.com

त्रिकोणीय संकट में ड्रैगन

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक के इस निर्णायक मोड़ पर खड़ा चीन आज एक ऐसे चौराहे पर दिखाई देता है, जहां उसकी महत्वाकांक्षाओं का विस्तार और उसकी वास्तविक क्षमताओं का क्षरण आमने-सामने खड़े हैं। कभी वैश्विक व्यवस्था को अपनी मुट्ठी में कैद करने का सपना देखने वाला यह 'ड्रैगन' अब भीतर से दरकती नींव, बाहर से बढ़ते अविश्वास और चारों ओर सिमटती रणनीतिक सीमाओं के बीच जूझता नजर आता है।

आर्थिक दरारें, सैन्य विस्तारवाद और डिजिटल आधिपत्य

राकेश नर्वाल

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक के मध्य में खड़ा चीन आज एक ऐसे 'सैंडबॉक्स' में फंसा हुआ है, जहाँ उसके अपने ही बनाए खिलौने अब उसे घायल कर रहे हैं। बीजिंग का 'चीनी स्वप्न' आज उस सुनहरे पर्दे जैसा है, जिसके पीछे से आर्थिक चरमराहट की कर्कश और डरावनी आवाजें साफ सुनाई दे रही हैं। शी जिनपिंग का ड्रैगन, जो कभी वैश्विक आकाश में निर्विवाद उड़ान भर रहा था, अब अपनी ही आंतरिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति से नीचे खिंचा चला आ रहा है। यह आलेख केवल एक सत्ता के विश्लेषण का दस्तावेज नहीं है, बल्कि उस 'पतन की इबारत' का कच्चा-चिट्ठा है, जिसे चीन अपने आक्रामक सैन्य विस्तार और डिजिटल गुलामी के शोर में छिपाने की नाकाम कोशिश कर रहा है। आज का चीन एक ऐसे चौराहे पर है जहां उसके कदम लड़खड़ा रहे हैं और उसकी महत्वाकांक्षाएं उसकी क्षमता के गले का फांस बनती जा रही हैं।

आर्थिक ढलान: रेत के महलों का अंत

चीन का तथाकथित 'आर्थिक चमत्कार' पिछले तीन दशकों से जिस 'निवेश और निर्माण' के नशीले इंजेक्शन पर चल रहा था, 2026 के आते-आते उसका असर पूरी तरह समाप्त हो चुका है। चीन का रियल एस्टेट क्षेत्र अब वह 'डेडली स्पाइरल' बन चुका है, जिसने पूरी अर्थव्यवस्था को अपनी चपेट में ले लिया है। एवरग्रांड का पतन तो महज एक बानगी थी, आज स्थिति यह है कि गोस्ट सिटीज के उस कब्रिस्तान में चीन की जीडीपी का लगभग एक-तिहाई हिस्सा दफन है। करोड़ों चीनी नागरिकों की जीवन भर की कमाई उन कंक्रीट के ढांचों में जमी हुई है, जो कभी घर नहीं बन पाएंगे। यह केवल व्यापारिक घाटा नहीं है, बल्कि एक सामाजिक अनुबंध का टूटना है। जब एक राष्ट्र की पूरी संपत्ति का मूल्य गिरता है, तो नागरिकों का आत्मविश्वास राख के ढेर में तब्दील हो जाता है।

बाजार में डिफ्लेशन का दानव घर कर गया है। जहां दुनिया की अन्य महाशक्तियां महंगाई की आग से झुलस रही हैं, वहीं चीन का गिरता हुआ दाम इस बात का संकेत है कि मांग का स्रोत सूख चुका है। लोग भविष्य के डर से पैसा बचा रहे हैं, क्योंकि उन्हें पता है कि आने वाला कल अनिश्चित है। युवा बेरोजगारी दर, जो आधिकारिक आंकड़ों की चौखट लांघकर एक 'टिक-टिक' करते टाइम बम की तरह है, अब शी जिनपिंग की सत्ता को चुनौती दे रही है। स्नातक डिग्री धारी युवा अब कारखानों की मशीनों के पीछे घिसने के बजाय 'लेट जाओ' या 'सड़ने दो' जैसी प्रवृत्तियों को अपना रहे हैं। यह एक मौन विद्रोह है—उन युवाओं का विद्रोह, जो अब पार्टी के उस 'अनंत विकास' के झूठ को और नहीं पीना चाहते।

ताइवान: आग की लकीर और 'ग्रे ज़ोन' का खौफ

जब घर की नींव में दरारें पड़ने लगती हैं, तो तानाशाह अक्सर अपनी जनता का ध्यान भटकाने के लिए पड़ोसी के दरवाजे पर शोर मचाने लगते हैं। राष्ट्रपति शी जिनपिंग के लिए ताइवान अब एक क्षेत्रीय मुद्दा नहीं, बल्कि उनके 'अस्तित्व का कवच' बन चुका है।

2026 में ताइवान जलडमरूमध्य में चीनी नौसेना का जो उन्माद है, वह किसी पूर्ण युद्ध की तैयारी नहीं, बल्कि एक 'साइकोलॉजिकल ड्रामा' है। चीन अब 'सालामी स्लाइसिंग' की उस खतरनाक चाल पर चल रहा है—जहां एक-एक इंच समुद्र को ऐसे निगला जाता है कि दुनिया को पता भी न चले। 'ग्रे ज़ोन' रणनीति का यह खेल इतना सूक्ष्म है कि ताइवान की अर्थव्यवस्था का दम घुट रहा है। हर दिन ताइवान के हवाई रक्षा क्षेत्र में उड़ते चीनी लड़ाकू विमान यह संदेश देते हैं कि ड्रैगन अब अपनी सीमाएं बदल चुका है। यह रणनीति उस 'न्यू नॉर्मल' को स्थापित करने की है।

जहां युद्ध की घोषणा तो नहीं होती, लेकिन शांति भी नहीं बचती। चीन अंतरराष्ट्रीय समुदाय, विशेषकर अमेरिका को यह दिखाना चाहता है कि इस प्रशांत क्षेत्र में अब केवल ड्रैगन की ही दहाड़ गूंजेगी। लेकिन इस जुए में खतरा यह है कि एक छोटी सी गलती, एक अनपेक्षित चिंगारी, इस पूरे समुद्री इलाके को एक ऐसे 'ब्लैक होल' में बदल सकती है, जहां से वापसी का रास्ता बंद हो जाए।

डिजिटल सिल्क रोड: तकनीकी उपनिवेशवाद का जाल

पश्चिम के प्रतिबंधों से घिरे बीजिंग ने अब अपना जाल उन देशों पर फेंका है, जो तकनीक की भूख में अंधे हो रहे हैं। अफ्रीका से लेकर लैटिन अमेरिका तक, चीन अब केवल सड़कें नहीं बिछा रहा, वह देशों का 'डिजिटल डीएनए' हैक कर रहा है। 'हुवावे' और 'जेडटीई' जैसी कंपनियां विकासशील देशों को अत्यंत सस्ती दरों पर 5G नेटवर्क का लोभ देकर एक ऐसे पिंजरे में बंद कर रही हैं, जिससे बाहर निकलना अब असंभव है।

'स्मार्ट सिटी' के नाम पर निर्यात किया जा रहा चीन का निगरानी तंत्र असल में एक 'डिजिटल कॉलोनी' का आधार है। जब किसी देश की पूरी बैंकिंग, डेटा और संचार व्यवस्था चीनी हार्डवेयर पर टिकी होती है, तो वह देश रणनीतिक रूप से बीजिंग की कठपुतली बन जाता है। यह 'तकनीकी उपनिवेशवाद' का वह नया रूप है जहां तोपें नहीं, बल्कि डेटा के स्विच दबाकर किसी भी सरकार को अंधेरे में धकेला जा सकता है। बीजिंग का 'डिजिटल सिल्क रोड' उन देशों के लिए एक 'ट्रोजन हॉर्स' है, जो आज सस्ते इंफ्रास्ट्रक्चर के लालच में अपनी संप्रभुता का सौदा कर रहे हैं। भविष्य में, यदि इन देशों को वैश्विक मंच पर चीन के खिलाफ खड़ा होना पड़ा, तो बीजिंग एक बटन दबाकर उनकी बिजली, पानी और अर्थव्यवस्था को ठप करने की ताकत रखता है। यह एक ऐसा डिजिटल पिंजरा है, जिसके भीतर हर नागरिक की हर सांस पर ड्रैगन की नजर है।

वैश्विक भू-राजनीति और भारत की चुनौती

चीन की यह त्रिकोणीय स्थिति पूरी दुनिया के लिए एक 'परफेक्ट स्टॉर्म' की तरह है। यदि चीन की अर्थव्यवस्था गिरती है, तो पूरी वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला ताश के पत्तों की तरह

बिखर जाएगी। लेकिन यदि वह इस आंतरिक मंदी से निकलने के लिए युद्ध का रास्ता चुनता है, तो वह तीसरे विश्व युद्ध की आहट होगी।

भारत, जो अब इस क्षेत्र का सबसे बड़ा 'विकल्प' बनकर उभर रहा है, उसने अपनी विनिर्माण क्षमता को बढ़ाकर चीन के एकाधिकार को खुली चुनौती दी है। अमेरिका, जापान, और ऑस्ट्रेलिया के साथ मिलकर 'क्वाड' गठबंधन अब चीन की हर हरकत पर एक बाज की नजर बनाए हुए है। हिंद महासागर से लेकर दक्षिण चीन सागर तक, चीन को अब यह एहसास हो गया है कि दुनिया अब उसे एक 'अजेय महाशक्ति' नहीं, बल्कि एक 'आक्रामक और असुरक्षित' राष्ट्र मान रही है। भारत की बढ़ती साख चीन की उन तमाम आर्थिक और रणनीतिक योजनाओं पर पानी फेर रही है, जो उसे 'ग्लोबल साउथ' का मसीहा बनाना चाहती थीं।

ड्रैगन की अनिश्चित उड़ान

आज का चीन उस स्थिति में है जहां से वह न तो पीछे मुड़ सकता है और न ही बिना गिरे आगे बढ़ सकता है। शी जिनपिंग की पूरी सत्ता का दारोमदार 'राष्ट्रीय कायाकल्प' के उस वादे पर है, जिसे अब आर्थिक वास्तविकताएं नग्न कर रही हैं। ताइवान पर सैन्य दबाव और ग्लोबल साउथ में तकनीकी घुसपैठ—ये सब उसी डर को ढंकने के लिए बिछाए गए पर्दे हैं, जो धीरे-धीरे फटने लगे हैं। दुनिया को यह समझना होगा कि एक कमजोर और अंदर से असुरक्षित चीन, एक शक्तिशाली चीन से कहीं अधिक खतरनाक हो सकता है। यह असुरक्षा ही उसे दुनिया के लिए 'अनप्रेडिक्टेबल' बना रही है। आने वाले कुछ साल यह तय करेंगे कि क्या चीन एक जिम्मेदार वैश्विक शक्ति बनेगा, या फिर अपनी ही महत्वाकांक्षाओं के बोझ तले दबकर दुनिया को एक नए संघर्ष की आग में झोंक देगा। ड्रैगन अब एक चौराहे पर है - या तो वह अपना 'मुकुट' उतारकर शांति का रास्ता चुने, या फिर उसी आग में भस्म हो जाए, जिसे उसने अपने पड़ोसियों को डराने के लिए खुद सुलगाया था। अंततः, इतिहास कभी भी उन ताकतों को माफ नहीं करता जो शांति के बजाय अहंकार को अपना मार्ग बनाती हैं। ड्रैगन की यह उड़ान अब अपने अंतिम मुकाम की ओर है, जहां हर ऊंची उड़ान के बाद एक गहरी और अंधकारमय ढलान इंतजार कर रही है। ●

फीके पड़ते महात्मा गांधी

तेज़ शहरीकरण, उपभोक्तावाद और बदलती जीवनशैली के बीच गांधी के सादगी, संयम और ग्राम स्वराज के आदर्श धीरे-धीरे पीछे छूटते दिख रहे हैं। आधुनिक भारत में मूल्य और व्यवहार के बीच की दूरी लगातार गहराती जा रही है।

रामनाथ झा

महात्मा गांधी के आदर्श आज के भारत में धीरे-धीरे कमजोर पड़ते दिखाई दे रहे हैं। तेज़ शहरीकरण और आधुनिकीकरण ने लोगों की सोच, जीवनशैली और प्राथमिकताओं को काफी बदल दिया है। पहले जहां सादगी, आत्मनिर्भरता और नैतिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता था, वहीं आज भौतिक सुख-सुविधाओं और उपभोक्तावाद की ओर झुकाव बढ़ गया है। इसी कारण गांधीजी के नैतिक विचारों और आज की सामाजिक हकीकत के बीच दूरी बढ़ती जा रही है।

भारत को आज़ाद हुए लगभग आठ दशक हो चुके हैं। इस दौरान देश में बड़े बदलाव आए हैं। तकनीक के विकास ने दुनिया को एक-दूसरे के करीब ला दिया है। अब जानकारी कुछ ही सेकंड में एक जगह से दूसरी जगह पहुंच जाती है। लोगों का रहन-सहन, काम करने का तरीका और सोचने का नजरिया भी बदल गया है। दुनिया के कई देशों में जीवनशैली अब काफी हद तक मिलती-जुलती दिखती है, जिसे वैश्विक संस्कृति कहा जा सकता है।

इन बदलावों में शहरीकरण की बड़ी भूमिका रही है। गांवों से लोग बेहतर शिक्षा, रोजगार और सुविधाओं की तलाश में शहरों की ओर जा रहे हैं। शहर नई सोच, नए अवसर और नई जीवनशैली को बढ़ावा देते हैं। लेकिन इसी प्रक्रिया में पारंपरिक और गांधीवादी मूल्यों का प्रभाव कम होता जा रहा है।

शहर स्वभावतः सांस्कृतिक और वैचारिक संगम स्थल होते हैं। इस प्रक्रिया ने भारत और उसके नागरिकों पर गहरा प्रभाव डाला है, जिससे आज का भारतीय 1947 के भारतीय से लगभग भिन्न दिखाई देता है। इस बदलाव ने पारंपरिक और गांधीवादी आदर्शों को भी काफी हद तक क्षीण किया है। यद्यपि अधिकांश भारतीय महात्मा गांधी को उच्च सम्मान देते हैं और स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान को स्वीकार करते हैं, फिर भी एक बड़ा वर्ग उनके कई मूल सिद्धांतों से दूर होता दिखाई देता है।

गांधीवादी संयम से बढ़ते मदिरा बाजार तक

गांधी शराब सेवन के कट्टर विरोधी थे और किसी भी ऐसी नीति के पक्ष में नहीं थे जो मद्यपान को बढ़ावा दे। उन्होंने इसे 'शैतान की खोज' बताया। उनका मानना था कि शराब मनुष्य की आत्मा को नष्ट कर उसे पशु बना देती है। उन्होंने कहा था, 'यदि मुझे पूरे भारत का एक घंटे के लिए तानाशाह नियुक्त किया जाए, तो मैं बिना मुआवजे सभी शराब की दुकानों को बंद कर दूँगा और सारी ताड़ी नष्ट कर दूँगा।'

फिर भी, भारत में मद्यपान का इतिहास वेदों तक जाता है। स्वतंत्रता के समय प्रति व्यक्ति शराब खपत बहुत कम मानी जाती है। सामाजिक रूप से शराब को नापसंद किया जाता था, सिवाय छोटे अभिजात और पाश्चात्य प्रभाव वाले वर्गों के। गांधी के विरोध के कारण ही भारतीय संविधान में मद्यनिषेध को राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों में शामिल किया गया। अनुच्छेद 47 में कहा गया है कि राज्य स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मादक पेय और औषधि को छोड़कर अन्य नशीले पदार्थों के सेवन पर प्रतिबंध लाने का प्रयास करेगा।

स्वतंत्रता के बाद हरियाणा, तमिलनाडु, केरल, मेघालय, मिज़ोरम, नागालैंड और मणिपुर जैसे राज्यों ने मद्यनिषेध का प्रयोग किया, परंतु सफलता नहीं मिली। काला बाजार फलता-फूलता रहा। अधिकांश राज्यों ने नीति छोड़ दी। बिहार इसका हालिया उदाहरण है। समय के साथ प्रति व्यक्ति खपत बढ़ी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार यह चार लीटर से अधिक हो

चुकी है। भारतीय व्हिस्की वैश्विक खपत का लगभग 48 प्रतिशत है। लगभग 14।6 प्रतिशत वयस्क शराब पीते हैं, और महिलाओं में भी स्वीकृति बढ़ रही है। स्पष्ट है कि गांधी का संयम आह्वान सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर कमजोर पड़ रहा है।

ग्राम स्वराज बनाम शहरी परिवर्तन

गांधी ने ग्राम स्वराज का समर्थन किया। वे गाँवों को आर्थिक और नैतिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। उनका विश्वास था कि भारत का भविष्य गाँवों में है। वे शहरों के विस्तार के विरोधी थे। इसके विपरीत, स्वतंत्रता के बाद भारत में शहरीकरण बढ़ा है। 1951 में शहरी आबादी 17।29 प्रतिशत थी, 2011 में 31।16 प्रतिशत हुई और अब लगभग 36 प्रतिशत आंकी जाती है। ग्रामीण हिस्सेदारी 82।71 से घटकर लगभग 64 प्रतिशत रह गई है। आर्थिक वृद्धि के साथ शहरीकरण और बढ़ेगा।

लोग बड़े पैमाने पर गाँवों से शहरों की ओर गए हैं। स्वतंत्रता के समय 6 करोड़ से कम शहरी आबादी अब 50 करोड़ से अधिक हो चुकी है। लगभग 1।8 करोड़ भारतीय विदेश भी गए हैं। गाँव गणराज्य की अवधारणा धीरे-धीरे पीछे छूटती दिखती है।

'शैतान की खोज' कही जाने वाली शराब का बढ़ता अरबों का कारोबार और वैश्विक ब्रांड्स के बीच सिमटती खादी, आज के बदलते भारत में गांधीवादी दर्शन के समक्ष खड़े अस्तित्वगत संकट को उजागर करती है।

खादी की परिकल्पना और उसका हाशियाकरण

स्वतंत्रता के समय खादी-हाथ से काता और बुना हुआ वस्त्र-भारतीय चेतना में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती थी, जिसका श्रेय मुख्यतः महात्मा गांधी के प्रयासों को जाता है। गांधी ने खादी को गरीब ग्रामीणों के लिए रोजगार के साधन के रूप में देखा। समय के साथ उन्होंने इसे आत्मनिर्भरता, स्वशासन और विदेशी वस्तुओं पर निर्भरता के विरोध की एक विचारधारा का रूप दे दिया। औपनिवेशिक शासन कच्चा माल इंग्लैंड भेजकर वहीं तैयार महंगे कपड़े बनाकर भारत में पुनः आयात करता था, जिससे स्थानीय उद्योग कमजोर होते गए, उनका अपना वस्त्र उद्योग मजबूत हुआ और भारी मुनाफा अर्जित हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान खादी प्रतिरोध और देशभक्ति के प्रतीक के रूप में उभरी।

स्वतंत्रता के आरंभिक वर्षों में खादी वस्त्र सड़कों पर सामान्यतः दिखाई देते थे। अनेक राजनीतिक नेता और स्वतंत्रता सेनानी इसे धारण करते थे। 1956 में भारत सरकार ने इसके प्रोत्साहन हेतु खादी ग्रामोद्योग आयोग की स्थापना की। किन्तु तकनीकी प्रगति और बड़े पैमाने पर उत्पादन की प्रतिस्पर्धा के सामने खादी टिक नहीं सकी। इसकी उत्पादन लागत अधिक थी और वितरण संबंधी सीमाएँ भी थीं, जबकि यह आरामदायक, पर्यावरण-अनुकूल और त्वचा के लिए उपयुक्त थी। वस्त्र कंपनियों ने खादी को दरकिनार कर सस्ते और विविध परिधान बाजार में उतार दिए। 'कम कीमत में सर्वोत्तम मूल्य' की बाजार अवधारणा हावी हो गई। साथ ही, सरकारी नीतियाँ भी इसके व्यापक प्रसार में प्रभावी भूमिका नहीं निभा सकीं।

गांधी के कई सिद्धांत आज भी लाखों लोगों को सही-गलत का मार्ग दिखाते हैं। उनके विचार सादगी, सत्य, अहिंसा और आत्मनिर्भरता पर आधारित थे, जो आज भी नैतिक प्रेरणा देते हैं। हालांकि, स्वतंत्रता के बाद भारत ने विकास और औद्योगीकरण की राह अपनाई, जिससे तेज़ शहरीकरण और आर्थिक विस्तार हुआ। शहरों का बढ़ना, aबाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था और उपभोक्तावाद की प्रवृत्ति ने जीवनशैली को बदल दिया। इन बदलावों के कारण नीतियों और सामाजिक प्राथमिकताओं में व्यावहारिकता बढ़ी, जबकि गांधी के ग्राम स्वराज और सादगी जैसे आदर्श पीछे छूटते गए। परिणामस्वरूप, आदर्श और वास्तविकता के बीच दूरी बढ़ती दिखाई देती है।

यद्यपि खादी को आधुनिक रूप देने और फैशन ब्रांड के रूप में स्थापित करने के प्रयास जारी हैं, सफलता सीमित है। इसका बाजार हिस्सा इस तथ्य को स्पष्ट करता है। 2013-14 में 1,081 करोड़ रुपये से बढ़कर 2022-23 में 5,943 करोड़ रुपये तक बिक्री पहुँची, फिर भी 2023 में लगभग 7 लाख करोड़ रुपये के कुल परिधान बाजार की तुलना में यह बहुत छोटा अंश है। आज खादी सड़कों पर देशभक्ति के गर्वित प्रतीक के रूप में शायद ही दिखाई देती है।

महात्मा गांधी के सिद्धांत आज भी नैतिक मार्गदर्शन देते हैं, लेकिन स्वतंत्रता के बाद भारत का विकास उनके आदर्शों से अलग दिशा में बढ़ा है। बदलती सामाजिक प्राथमिकताओं, शहरीकरण और आर्थिक संरचनाओं के कारण यह दूरी लगातार बढ़ रही है और भविष्य में इसके और गहराने की संभावना है। ●

रामनाथ झा ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में एक विशिष्ट फेलो हैं।

Tea
Your Tagline Here

Fresh Drink

LEMON TEA

The Wonderful Taste Of Life

Order Now

www.lemonteaIndia.in

जल कूटनीति

पूर्वोत्तर भारत की नदियां केवल जलस्रोत नहीं, बल्कि व्यापार, कनेक्टिविटी और रणनीतिक ताकत की धमनियां हैं। बदलते भू-राजनीतिक परिदृश्य में इन जलमार्गों का पुनर्जीवन, भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति और क्षेत्रीय संतुलन के लिए बेहद महत्वपूर्ण बन गया है।

ज्योति भट्टाचार्य

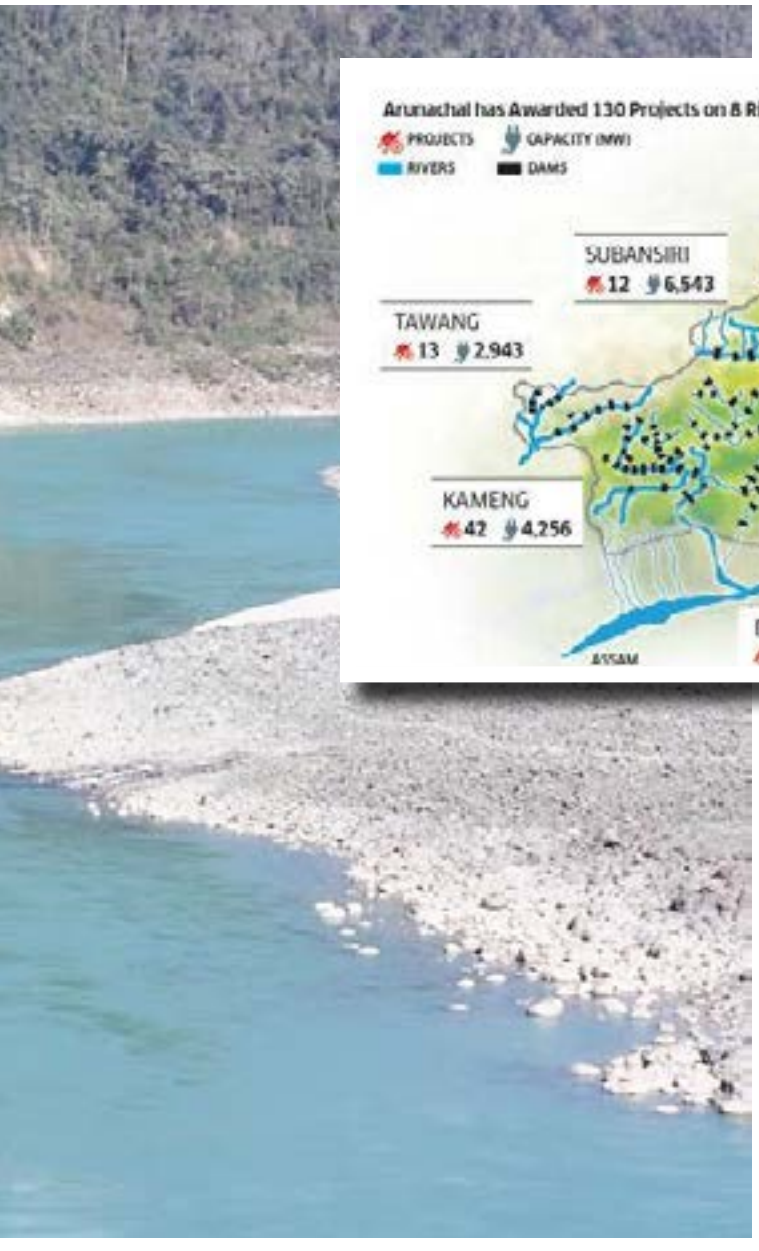

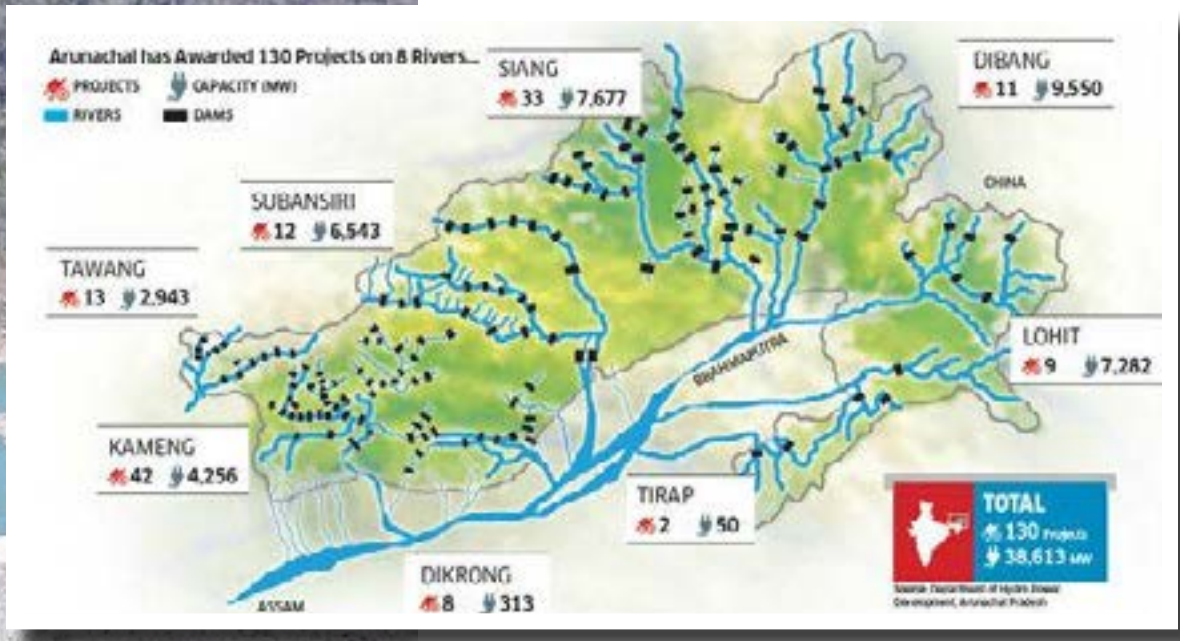

पूर्वोत्तर भारत में अलग-अलग पहचान और स्वभाव वाले आठ राज्य हैं। यह एशिया का सबसे ज्यादा नदियों वाले इलाकों में से एक है। इस इलाके के पहाड़ और जमीन भारतीय और यूरेशियन टेक्टोनिक प्लेट्स की हिमालय में बहुत बड़ी टक्कर के बाद बने। इस विशाल टक्कर से ढलानों और घाटियों का ऐसा जाल बना, जो पानी को उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम की ओर बहने का रास्ता देता है। इससे ये नदियां बाढ़ के साथ हजारों साल से जमा मिट्टी को बहाकर असम, बांग्लादेश और उससे आगे तक उपजाऊ मैदान बनाती हैं।

इस पूरे वॉटर नेटवर्क के केंद्र में ब्रह्मपुत्र नद है, जिसे तिब्बत में यारलुंग त्सांगपो कहते हैं। यह नदी हिमालय के उत्तरी ढलानों पर अंगसी ग्लेशियर से निकलता है, तिब्बत में पूरब की ओर बहता है फिर नामचा बरवा के पास अचानक तेज मोड़ लेकर अरुणाचल प्रदेश में आ जाता है। वहां से यह असम में घुमावदार रास्तों से होते हुए बांग्लादेश में पद्मा यानी गंगा से मिलकर बंगाल की खाड़ी में गिरता है। अपने रास्ते में इसमें पूर्वोत्तर भारत की कई सहायक नदियां आकर मिलती हैं। इस तरह ब्रह्मपुत्र एक अहम परिवहन मार्ग के रूप में काम करता है। यह खेती, सिंचाई और पानी से बनने वाली बिजली के लिए जीवनरेखा है। यह चीन, भूटान, बांग्लादेश और म्यांमार से भी भारत को कनेक्ट करता है, जिससे पूर्वोत्तर भारत इंडियन सबकॉन्टिनेंट और इंडो-पैसेफिक इलाके के बीच एक रणनीतिक कड़ी बन जाता है। ब्रह्मपुत्र को भारत में नदी नहीं, नद कहते हैं क्योंकि इसे पुरुष माना जाता है।

व्यापार की धमनी हैं ये नदियां

ऐतिहासिक रूप से पूर्वोत्तर भारत में व्यापार, कारोबार और अभियानों के लिए ब्रह्मपुत्र और बराक नदियों का इस्तेमाल होता रहा है। भारत के बंटवारे से पहले व्यापार के ये रोजमर्रा के रास्ते थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1844 में ही कोलकाता से डिब्रूगढ़ तक वॉटरवे बना दिया था। 1847 के बाद स्टीमशिप के जरिए असम और कोलकाता के बीच, पूर्वी बंगाल (आज का बांग्लादेश) के रास्ते, चाय और बाकी चीजें ढोई जाती थीं।

उसी समय अंग्रेजों ने दक्षिणी असम के सिलचर को बराक–

सुरमा–मेघना जलमार्ग के जरिए कोलकाता बंदरगाह से जोड़ा। लेकिन 1947 में सिलहट पूर्वी बंगाल को दे दिया गया, तो यह रास्ता बंद हो गया। आजादी से पहले ब्रह्मपुत्र घाटी में धुबरी, डिब्रूगढ़, पांडु (गुवाहाटी), नीमाती, तेजपुर और जोगीघोपा अहम बंदरगाह थे। वहीं बदरपुर, करीमगंज और सिलचर बराक घाटी के मुख्य बंदरगाह थे। इन बंदरगाहों से माल नारायणपुर, खुलना, चांदपुर, चिलमारी और ढाका के रास्ते कोलकाता भेजा जाता था। अब ये जगहें बांग्लादेश में हैं।

नेशनल वाटरवेज एक्ट 2016 के तहत ब्रह्मपुत्र और बराक नदी नेटवर्क की हाइड्रो पॉवर और नौवहन क्षमता को फिर से बहाल करने पर खास जोर दिया गया। इसके बाद ब्रह्मपुत्र नद (राष्ट्रीय जलमार्ग NW-2) की व्यापारिक क्षमता काफी बढ़ी है। लगभग 6 लाख टन माल NW-2 के जरिए भेजा जाता है। इसमें जिसमें अनाज, खाद, बांस और निर्माण सामग्री वगैरह हैं।

बराक नदी पारंपरिक तौर पर बराक घाटी और बंगाल के बीच व्यापार का जरिया रही है। 2016 में लखीमपुर से भांगा तक के हिस्से को नेशनल वॉटरवे NW-16 घोषित किया गया। लेकिन इस नदी से राज्यों के अंदर-बाहर व्यापार बढ़े, इसके लिए अभी और कदम उठाने की जरूरत है। ड्रेजिंग और ठीक-ठाक नदी बंदरगाहों की कमी इसकी व्यावसायिक क्षमता को सीमित करती है। फिलहाल NW-2 और NW-16 पर होने वाला व्यापार NW-1 (गंगा–भागीरथी–हुगली) के बरक्स कम है। पूर्वोत्तर के बाकी जरूरी जलमार्गों में सिक्किम की मुख्य नदी तीस्ता भी है। यह उत्तरी सिक्किम के ग्लेशियरों से निकलती है, रंगित और रंगपो नदियों से मिलती है। वहां से दक्षिण की ओर बहते हुए पश्चिम बंगाल की सीमा बनाती है, फिर बांग्लादेश के रास्ते बंगाल की खाड़ी में गिरती है। तीस्ता हाइड्रो पॉवर प्रोडक्शन के लिए अहम है। यह उत्तर बंगाल और बांग्लादेश में खेती और कमाई का सहारा है। कभी यह नदी तिब्बत और हिमालय के अंदरूनी बाजारों के बीच सबसे पुराना नदी व्यापार मार्ग था। इससे व्यापारी चीन से बंगाल की खाड़ी की ओर जाते थे। भारत और बांग्लादेश में तीस्ता के पानी का बंटवारा लंबे समय से चिंता का विषय रहा है। इससे इसके कमर्शियल उपयोग के लिए जरूरी बुनियादी ढांचा बनाने में दिक्कत आई है।

मणिपुर नदी का इस्तेमाल अभियानों के लिए होता था। वर्ल्ड वार-II में जापानी सेना ने भी इसका उपयोग किया। यह म्यांमार से होकर बहती है, लेकिन बंगाल की खाड़ी तक यह एक अल्टरनेटिव रूट भी हो सकता है। हालांकि इसकी संभावना अभी तक पूरी तरह नहीं देखी गई, शायद म्यांमार के कठिन भौगोलिक हालात के चलते। वहीं कालादान नदी मिजोरम (पूर्वोत्तर भारत) से निकलकर म्यांमार

जाती है। यह सिलीगुड़ी कॉरिडोर के विकल्प के रूप में अहम रोल अदा कर सकती है, जो बांग्लादेश के बाहर से होकर जाएगा। यह नदी कालादान मल्टी-मॉडल ट्रांजिट ट्रांसपोर्ट प्रोजेक्ट (KMTTP) के जरिए मिजोरम को म्यांमार के रखाइन के सित्तवे बंदरगाह से जोड़ती है। उम्मीद है कि सित्तवे बंदरगाह 2027 तक पूरी तरह चालू हो जाएगा। ऐसा हुआ तो पूर्वोत्तर भारत और म्यांमार के साथ-साथ नेपाल, भूटान और बांग्लादेश जैसे पड़ोसी देशों के लिए भी व्यापार के मौके खुल सकते हैं।

हालांकि बांग्लादेश और म्यांमार में हालिया राजनीतिक उथल-पुथल ने इस बंदरगाह को क्षेत्रीय सहयोग के केंद्र के रूप में विकसित करने की राह को मुश्किल कर दिया है। ऐसे में भारत को सित्तवे बंदरगाह से मिलने वाले रणनीतिक और आर्थिक फायदे पाने के लिए तेजी दिखानी होगी। बांग्लादेश के साथ लंबे और टिकाऊ रिश्ते जरूरी हैं। साथ ही म्यांमार में अलग-अलग हिस्सों पर कंट्रोल रखने वाले पक्षों से बातचीत जारी रखनी जरूरी है। भारत सरकार अपने हित सुरक्षित रखने के लिए म्यांमार की सैन्य सरकार और अराकान आर्मी-दोनों से बातचीत कर रही है। सित्तवे बंदरगाह भारत के पूर्वी तट और पूर्वोत्तर के बीच एक वैकल्पिक समुद्री रास्ता देता है।

कैसे जिंदा हो हमारे फायदे के रास्ते

1991 में शुरू की गई लुक ईस्ट पॉलिसी में शुरुआत में पूर्वोत्तर

शामिल नहीं था। बाद में यह धीरे-धीरे केंद्र में आया और एक्ट ईस्ट पॉलिसी के साथ और भी अहम बन गया। वॉटर डिप्लोमेसी इस रणनीति का जरूरी हिस्सा बन गई है। ब्रह्मपुत्र, बराक और कालादान जैसी सीमा पार की नदियों का इस्तेमाल कनेक्टिविटी, आर्थिक जुड़ाव और दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ रणनीतिक रिश्ते मजबूत करने के लिए किया जा रहा है। इसमें साझा जल संसाधनों को कुछ यूं संभालना भी शामिल है कि पड़ोसियों से सहयोग बढ़े, टकराव कम हो और ऊर्जा व व्यापार के हित सुरक्षित रहें। इससे क्षेत्रीय स्थिरता को भी ताकत मिलती है। इसी वजह से भारत सरकार ने हाल के वर्षों में पूर्वोत्तर के नदी नेटवर्क में बड़ा इन्वेस्टमेंट किया है। मसलन, कोपिली नदी को इंटर स्टेट ट्रांसपोर्ट के लिए चालू किया गया है। पांडु नदी बंदरगाह को डेवलप कर उसे ईस्ट–वेस्ट कॉरिडोर से जोड़ा गया है। ब्रह्मपुत्र के सदिया–धुबरी हिस्से पर माल ढुलाई बढ़ी है। यहां से हर साल करीब छह लाख टन माल पड़ोसी देशों को भेजा जाता है।

पूर्वोत्तर की नदियां सिर्फ प्राकृतिक संपत्ति नहीं है। वे जीवन रेखाएं और रणनीतिक धमनियां हैं, जो भूगोल को जियो-पॉलिटिक्स से, पहाड़ों को समुद्र से, देशों को गांवों से और छोटे नदी बंदरगाहों को वैश्विक व्यापार मार्गों से जोड़ती हैं। फिर भी इंटर स्टेट ट्रेड को मजबूत करने के लिए साफ रोडमैप जरूरी है। इसके लिए ड्रेजिंग पूरी करनी होगी, तटबंधों की मरम्मत करके इनमें बांध और बैराज बनाने होंगे। लुक ईस्ट पॉलिसी के तहत भारत-म्यांमार-थाईलैंड त्रिपक्षीय राजमार्ग, मोरेह-तामू-कलेवा रोड, KMTTP, म्यांमार-भारत-बांग्लादेश गैस पाइपलाइन, तमंथी हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट और ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क के बारे में भी सोचना होगा। ये दोतरफा और बहुपक्षीय कनेक्टिविटी व बुनियादी ढांचा परियोजनाएं थीं, जो या तो ठप पड़ी हैं या लंबित हैं। एक्ट ईस्ट पॉलिसी की गति का इस्तेमाल कर इन परियोजनाओं को जल्द ठोस नतीजे तक पहुंचाना जरूरी है।

पूर्वोत्तर भारत में बड़ा कारोबारी केंद्र बनने और इंडो-पैसिफिक से और गहराई से जुड़ने की ताकत है। लेकिन इस ताकत को जमीन पर उतारने के लिए भारत को तुरंत यहां के नदी नेटवर्क को दोबारा मजबूत करना होगा, और उसे देश के बाकी हिस्सों से जोड़ना होगा। बांग्लादेश के साथ रिश्तों में बढ़ते तनाव से चिंता है कि वो शायद अब एक्ट ईस्ट नीति का मुख्य आधार न रह जाए, जैसा पहले सोचा गया था। ऐसे में केएमटीटीपी और सित्तवे बंदरगाह को जल्द से जल्द चालू करना जरूरी है, ताकि पूर्वोत्तर को भरोसेमंद समुद्री पहुंच मिल सके। साथ ही भारत को बांग्लादेश और म्यांमार- दोनों के साथ रिश्ते मजबूत करते रहना होगा, ताकि पूर्वोत्तर को बड़े इंडो-पैसिफिक ढांचे में आसानी से जोड़ा जा सके। ●

ज्योति भट्टाचार्य सिलचर स्थित असम (केंद्रीय) विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान की प्रोफेसर हैं और भारत की विदेश नीति और पूर्वोत्तर भारत में विशेषज्ञ हैं।

रसोई का संकट

सुमित्रा भट्टी

मध्य-पूर्व के संघर्ष से उपजी एलपीजी की आसन्न किल्लत पूरे दक्षिण एशिया में दैनिक जीवन को अस्त-व्यस्त कर रही है—लागत बढ़ रही है, व्यापार ठप हो रहे हैं और वैश्विक ऊर्जा आपूर्ति के झटकों के प्रति इस क्षेत्र की गहरी संवेदनशीलता उजागर हो गई है।

भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और दक्षिण एशियाई क्षेत्र के अन्य देश तरल पेट्रोलियम गैस (एलपीजी) की संभावित कमी के संकेतों का सामना कर रहे हैं, क्योंकि मध्य-पूर्व में जारी संघर्ष महत्वपूर्ण ऊर्जा आपूर्ति श्रृंखलाओं को प्रभावित कर रहा है।

नई दिल्ली के साकेत इलाके में सड़क किनारे खाने-पीने की दुकान चलाने वाले 48 वर्षीय प्रहलाद सिंह, बड़ी बेचैनी के साथ अपने फोन पर उन अपडेट्स को देख रहे हैं जो भारत के कई राज्यों में खाद्य व्यवसायों को प्रभावित करने वाली एलपीजी की किल्लत के बारे में हैं। यह व्यवधान ईरान के खिलाफ जारी युद्ध का परिणाम है, जो अमेरिका-इजरायल हमलों के बाद शुरू हुआ—एक ऐसा युद्ध जिसने वैश्विक ऊर्जा आपूर्ति श्रृंखला को झकझोर कर रख दिया है और तेल व गैस बाजारों में अनिश्चितता का माहौल पैदा कर दिया है।

सड़क किनारे एक छोटे से स्टॉल से चाइनीज खाना बेचने वाले सिंह कहते हैं, 'यह हम सभी पर बहुत बुरा असर डालने वाला है।' वह अब इस बात की गणना कर रहे हैं कि उनके पास बची हुई गैस की आपूर्ति कितने समय तक चलेगी। उनका कहना है कि वर्तमान में वह जिस सिलेंडर का उपयोग कर रहे हैं, वह केवल तीन दिन और चल पाएगा।

सिंह आगे कहते हैं, 'मैं पहले से ही इस बात को लेकर चिंतित हूँ कि क्या मुझे समय पर अगला सिलेंडर मिल पाएगा। हमारी आजीविका दांव पर लगी है।'

पूरे भारत में, उन कैंटीनों, रेस्तरां और होटलों से इसी तरह की चिंताएं उभर रही हैं जो अपनी रसोई चलाने के लिए कमर्शियल एलपीजी सिलेंडरों पर भारी निर्भर हैं। ऊर्जा आपूर्ति में आए व्यवधानों ने भारत में एलपीजी की कीमतों को पहले ही बढ़ा दिया है। सरकार ने हाल ही में घरेलू सिलेंडरों की कीमत में लगभग 60 रुपये (0.65 डॉलर) और कमर्शियल सिलेंडरों में लगभग 115 रुपये (1.25 डॉलर) की वृद्धि की है।

दक्षिणी राज्य तेलंगाना के 'बिरयानी हाउस' रेस्तरां में गाजर, फूलगोभी, प्याज और पनीर कटे हुए काउंटर पर रखे हैं, लेकिन रसोई पूरी तरह शांत हो गई है। भोजनालय के मालिक का कहना है कि एलपीजी सिलेंडरों की भारी कमी ने उन्हें दिन के समय परिचालन बंद करने के लिए मजबूर कर दिया है।

यह रेस्तरां सामान्यतः सुचारू संचालन के लिए प्रत्येक सप्ताह लगभग दस कमर्शियल सिलेंडरों की मांग करता है, लेकिन मालिक का कहना है कि अब तक केवल दो ही डिलीवर हुए हैं। आपूर्ति कम होने के साथ, संकट हर बीतते दिन के साथ गहराता जा रहा है।

'यह जगह व्यस्त समय के दौरान भीड़भाड़ वाली रहती है, लेकिन अब हमने दिन के समय परिचालन बंद कर दिया है और केवल शाम को कुछ देर के लिए खोलेंगे। यह रमजान का महीना है और यह काम का चरम समय होना चाहिए था। हम बहुत चिंतित हैं,' अलीम अहमद ने कहा। उन्होंने यह भी जोड़ा कि सड़क किनारे के ढाबों और अन्य खाद्य केंद्रों पर इसकी सबसे गंभीर मार पड़ेगी।

अहमद बताते हैं कि तेलंगाना के कई छोटे रेस्तरां के लिए रमजान साल के सबसे व्यस्त मौसमों में से एक होता है, जब परिवार और कर्मचारी शाम को इफ्तार के भोजन के लिए बाहर निकलते हैं। हालांकि, रसोई गैस की निरंतर कमी उस समय के व्यापार को कम करने की धमकी दे रही है जो कमाई का सबसे बड़ा अवसर होना चाहिए था।

एक बयान में, 'बेंगलुरु होटल्स एसोसिएशन' ने कहा कि कमर्शियल एलपीजी सिलेंडरों की आपूर्ति रोक दी गई है, जिसने होटल उद्योग को बहुत कठिन स्थिति में डाल दिया है।

एसोसिएशन ने कहा, 'चूंकि होटलों को एक आवश्यक सेवा माना जाता है, इसलिए कई लोग—जिनमें वरिष्ठ नागरिक, छात्र और अन्य शामिल हैं जो दैनिक भोजन के लिए हम पर निर्भर हैं—इससे प्रभावित होंगे। तेल कंपनियों ने पहले आश्वासन दिया था कि 70 दिनों तक गैस आपूर्ति में कोई बाधा नहीं आएगी, इसलिए यह अचानक रुकावट एक बड़ा झटका है। हम केंद्र सरकार से तत्काल हस्तक्षेप करने, कमर्शियल गैस आपूर्ति बहाल करने और होटल उद्योग का समर्थन करने का आग्रह करते हैं।'

दिल्ली, मुंबई, पंजाब, यूपी और बेंगलुरु जैसे प्रमुख शहरों से कमर्शियल एलपीजी सिलेंडरों की कमी की खबरें पहले ही सामने आ चुकी हैं, जिसमें कई रेस्तरां और कैटरिंग व्यवसायों का कहना है कि काम करना तेजी से मुश्किल होता जा रहा है।

आम नागरिक महसूस कर रहा है मार

दिल्ली एनसीआर के बाहरी इलाके में 45 वर्षीय संध्या पाल अपनी 'क्लाउड किचन' में गैस कनेक्शन को बहुत सावधानी से मैनेज कर रही हैं। वह एक छोटी टिफिन सर्विस चलाती हैं जो कार्यालय कर्मचारियों और छात्रों को घर का बना खाना पहुँचाती है।

भारत के कई शहरों में अफरा-तफरी का माहौल है क्योंकि लोग इस डर के बीच एलपीजी सिलेंडर भरवाने के लिए कतारों में खड़े हैं कि कीमतें और बढ़ सकती हैं। उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में निवासियों का कहना है कि भविष्य की आपूर्ति को लेकर अनिश्चितता ने कई घरों को अतिरिक्त सिलेंडर सुरक्षित करने के लिए प्रेरित किया है।

'बहुत अनिश्चितता है। हमें डर है कि कीमतें और बढ़ सकती हैं,' पवन कुमार ने कहा, जो एक कपड़ा दुकान में सेल्समैन के रूप में काम करते हैं और अपने घर के लिए गैस सिलेंडर सुरक्षित करने के लिए घंटों कतार में खड़े रहे।

नई दिल्ली में एक रेस्तरां के मालिक, 33 वर्षीय आफताब अहमद ने कहा, 'ईंधन और रसोई गैस की अधिक लागत का मतलब जल्द ही और अधिक महंगे रेस्तरां भोजन, स्ट्रीट फूड, कैटरिंग सेवाओं और परिवहन से हो सकता है। यह धीरे-धीरे पैकेट बंद भोजन, सब्जियों और डिलीवरी सेवाओं की कीमतों को भी ऊपर खींच सकता है क्योंकि व्यवसाय बढ़ते खर्चों का बोझ ग्राहकों पर डालेंगे। यह बढ़ोत्तरी घरेलू बजट को तनावपूर्ण बना देगी। यदि गैस की कीमतें बढ़ती रहीं, तो भोजन की कीमतें अनिवार्य रूप से बढ़ेंगी।'

त्वरित प्रतिक्रिया

सरकार ने जनता और व्यवसायों को आश्वस्त करने की कोशिश की है कि पर्याप्त आपूर्ति उपलब्ध है। बढ़ती चिंता पर प्रतिक्रिया देते हुए, भारतीय पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय ने कहा कि उसने आपूर्ति को स्थिर करने और आवश्यक खपत को प्राथमिकता देने के लिए कदम उठाना शुरू कर दिया है।

मंत्रालय के अनुसार, ईंधन आपूर्ति श्रृंखलाओं को प्रभावित करने वाले व्यवधानों को देखते हुए तेल रिफाइनरियों को एलपीजी उत्पादन बढ़ाने के निर्देश जारी किए गए हैं। अधिकारी अतिरिक्त उत्पादन को घरेलू रसोई गैस की ओर निर्देशित कर रहे हैं ताकि यह

सुनिश्चित किया जा सके कि घरों को निर्बाध आपूर्ति मिलती रहे।

मंत्रालय ने कहा है कि वह घरों के लिए घरेलू एलपीजी आपूर्ति को प्राथमिकता दे रहा है और जमाखोरी व कालाबाजारी रोकने के लिए बुकिंग के बीच 25 दिनों का अंतराल शुरू किया गया है। गैर-घरेलू उपयोग के लिए आयातित एलपीजी को पहले अस्पतालों और शैक्षणिक संस्थानों जैसे आवश्यक क्षेत्रों की ओर निर्देशित किया जा रहा है। अन्य गैर-घरेलू उपयोगकर्ताओं, जिनमें रेस्तरां, होटल और उद्योग शामिल हैं, के लिए एलपीजी आपूर्ति के अनुरोधों की समीक्षा के लिए तेल विपणन कंपनियों के तीन कार्यकारी निदेशकों की एक समिति गठित की गई है।

भारत सरकार ने 'आवश्यक वस्तु अधिनियम' के प्रावधानों को भी लागू किया, जो अधिकारियों को संकट के दौरान जमाखोरी, कालाबाजारी और कृत्रिम कमी को रोकने के लिए प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन, आपूर्ति और मूल्य निर्धारण को विनियमित करने की अनुमति देता है।

सत्ताधारी भाजपा सरकार के सांसद अशोक चव्हाण ने सदन में कहा, 'जाहिर है, जब मध्य-पूर्व में युद्ध की स्थिति होती है, तो यह उन कई देशों को प्रभावित करती है जो एलपीजी और पेट्रोलियम

उत्पादों का आयात करते हैं। फिलहाल, हमारे पास पर्याप्त स्टॉक है, जैसा कि पेट्रोलियम मंत्री और विदेश मंत्री ने सदन के पटल पर आश्वासन दिया है। इसलिए मुझे लगता है कि अगले दो से तीन महीनों तक चीजें काफी सामान्य रहेंगी। हम यह भी उम्मीद करते हैं कि विभिन्न देशों के शांति प्रयासों के माध्यम से युद्ध की स्थिति जल्द ही स्थिर हो जाएगी।'

पूरे एशिया में व्यापक प्रभाव

ग्लोबल साउथ में ऊर्जा की कमी की चिंता हर दिन बढ़ रही है क्योंकि शिपमेंट को 'हॉर्मुज जलडमरूमध्य' से गुजरने में संघर्ष करना पड़ रहा है। यह संकीर्ण मार्ग दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा गलियारों में से एक है और इसका उपयोग कई खाड़ी उत्पादकों द्वारा एशियाई बाजारों में तेल और तरल गैस के परिवहन के लिए किया जाता है।

भारत दुनिया में एलपीजी के सबसे बड़े उपभोक्ताओं में से एक है, जहाँ हर साल 33 मिलियन टन से अधिक रसोई गैस की खपत होती है। इस आपूर्ति का एक बड़ा हिस्सा आयात के माध्यम से आता है, जो देश को वैश्विक आपूर्ति झटकों और भू-राजनीतिक अस्थिरता के प्रति संवेदनशील बनाता है।

विश्लेषकों ने चेतावनी दी है कि शिपिंग लेन में व्यवधान अन्य देशों को भी प्रभावित कर सकता है जो आयातित ऊर्जा पर भारी निर्भर हैं, जिनमें बांग्लादेश, पाकिस्तान और श्रीलंका शामिल हैं।

बांग्लादेश में, अधिकारियों ने इस सप्ताह आपातकालीन उपाय पेश किए हैं और बिजली की खपत कम करने के प्रयास में विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को अस्थायी रूप से बंद करने का आदेश दिया है। गैस की कमी के कारण कई सरकारी उर्वरक कारखानों ने परिचालन निलंबित कर दिया है।

'ईरान-इजरायल युद्ध ने बांग्लादेश में ऊर्जा संकट पैदा कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप, सार्वजनिक परिवहन की समस्याएं और तेल व गैस का संकट उत्पन्न हो गया है,' ढाका निवासी मोनिरुल इस्लाम ने बताया। शिक्षण संस्थानों को बंद करने के साथ-साथ सरकार ने सार्वजनिक और निजी कार्यालयों को बिजली का उपयोग कम करने का आदेश दिया है, जिसमें लाइटिंग और एयर-कंडीशनिंग को आधा करना शामिल है। एक अन्य स्थानीय निवासी संजीदा अख्तर ने कहा, 'हमें उम्मीद है कि यह युद्ध जल्द ही समाप्त हो जाएगा और हम इस संकट से मुक्त हो जाएंगे।'

श्रीलंका में, जो अभी भी अपने 2022 के आर्थिक पतन से उबर रहा है, सरकार ने फिर से ईंधन राशनिंग के उपाय शुरू किए हैं और सरकारी कार्यालयों के लिए 'पावर-सेविंग छुट्टियां' घोषित की हैं।

पाकिस्तान में, ईरान युद्ध से संबंधित ऊर्जा आपूर्ति व्यवधानों ने पहले से मौजूद गंभीर आर्थिक संकट को और बढ़ा दिया है, जो उच्च मुद्रास्फीति, विदेशी मुद्रा की भारी कमी और भारी कर्ज की विशेषता है, जिसके लिए आईएमएफ से कई बार बेलआउट की आवश्यकता पड़ी है। प्रधान मंत्री शहबाज शरीफ ने ऊर्जा की खपत में कटौती के लिए कड़े उपायों की घोषणा की, जिसमें सरकारी कार्यालयों के लिए चार दिन का कार्य सप्ताह, स्कूलों और विश्वविद्यालयों को अस्थायी रूप से बंद करना और आधिकारिक वाहनों द्वारा ईंधन के उपयोग में 50% की कमी शामिल है। पाकिस्तान में पेट्रोल और डीजल की कीमतों में भी लगभग 20% की वृद्धि की गई है क्योंकि सरकार नागरिकों से ईंधन का स्टॉक न करने का आग्रह कर रही है।

दक्षिण एशिया के करोड़ों लोगों के लिए, हजारों किलोमीटर दूर चल रहा भू-राजनीतिक संघर्ष अब उनके घरों पर सीधा प्रभाव डालने लगा है। ●

यह आलेख सर्वप्रथम RT NEWS में प्रकाशित हुआ है। इसका पुनर्संपादित संस्करण साभार प्रस्तुत कर रहे हैं।

संतोष कुमार

ढला लाल साया

छत्तीसगढ़ के कुतुल में 'ढला लाल साया' अब सिर्फ एक अंत नहीं, बल्कि एक नए द्वंद्व की शुरुआत है। माओवादी खौफ के बाद यहां विकास की दस्तक तो है, लेकिन उसके साथ न्याय, विस्थापन और भरोसे के कठिन सवाल भी खड़े हैं।

छत्तीसगढ़ के उन घने, आदिम और रहस्यमयी जंगलों के बीच बसा कुतुल गांव, जो कभी माओवादी विद्रोह की 'अघोषित राजधानी' था, आज एक बड़े बदलाव के मुहाने पर खड़ा है। यहाँ की हवाओं में अब बारूद की उस तीखी गंध के बजाय, आधुनिकता की एक धीमी लेकिन मद्धम दस्तक सुनाई दे रही है। दशकों तक जहाँ बंदूकों की गूंज और दबे पांवों की आहट ही एकमात्र कानून थी, वहाँ अब 'विकास' की एक नई और शायद थोड़ी डरावनी लहर पहुंच रही है। 2026 की पहली तिमाही तक भारत सरकार का यह दावा एक कठोर वास्तविकता में बदल चुका है—दुनिया का सबसे लंबा और खूनी माओवादी विद्रोह अपने अंतिम सूर्यास्त के करीब है। कुतुल की गलियों से लाल झंडे उतर रहे हैं, लेकिन क्या यहाँ 'न्याय का सूरज' उगेगा, यह आज भी एक यक्ष प्रश्न है।

खौफ का वह काला अध्याय

कुतुल के आदिवासियों के लिए माओवादी 'जंगल राज' कोई क्रांतिकारी स्वप्न नहीं, बल्कि एक दमनकारी कारावास था। उन्होंने आदिवासियों को बड़े प्रोजेक्ट्स और बांधों से बचाने के नाम पर

अपने जाल में फंसाया, लेकिन वास्तविकता में उन्होंने इस समुदाय को केवल अपना 'मोहरा' बनाया। स्थानीय स्कूल के हेडमास्टर बताते हैं कि कैसे विद्रोहियों ने शिक्षा का गला घोंट दिया था; वे नहीं चाहते थे कि बच्चा पांचवीं कक्षा से आगे पढ़े, क्योंकि पढ़ा-लिखा आदिवासी सवाल पूछता है, और माओवाद केवल 'आदेश' पर पलता है।

इन 'सिद्धांतों' के ठेकेदारों की कंगारू अदालतों ने मौत के फरमान सुनाने में कभी देर नहीं की। वे समानता की बात करते थे, लेकिन उनके शीर्ष कमांडर बाहरी और ऊंची जाति के वे लोग थे, जो स्थानीय आदिवासियों को तुच्छ काम करने और बोरियत भरे कम्युनिस्ट लेक्चर सुनने पर मजबूर करते थे। यह विचारधारा नहीं, बल्कि खौफ का एक ऐसा तंत्र था, जिसने पूरे क्षेत्र की आत्मा को ही कुचल दिया था।

आत्मसमर्पण और 'पुचकार और फटकार' का खेल

राज्य ने इस विद्रोह को कुचलने के लिए 'पुचकार और फटकार' की नीति को एक कला की तरह अपनाया है। एक तरफ सुरक्षा बलों ने 2024 से अब तक उन 748 लड़ाकों को मिटा दिया है, जो कभी इस जंगल के 'अजेय' सितारे माने जाते थे, तो दूसरी तरफ आत्मसमर्पण करने वालों के लिए सरकारी तिजोरियां खोल दी गई हैं। आज 'कॉमरेड अरब' जैसे खूंखार कमांडर, जिनके हाथ सैकड़ों हत्याओं के रक्त से सने थे, अब पुनर्वास केंद्रों में फूलों वाली कमीज पहनकर माफी मांग रहे हैं।

यह केवल आत्मसमर्पण नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक विजय है। जब पूर्व माओवादी अब 'डिस्ट्रिक्ट रिजर्व गार्ड' की वर्दी पहनकर अपने ही पुराने साथियों का शिकार करते हैं, तो माओवाद की 'वैचारिक रीढ़' टूट जाती है। यह एक ऐसा शतरंज का खेल है, जहाँ सरकार ने विद्रोही के अपने ही प्यादों को उसी के खिलाफ वजीर बना दिया है।

विकास बनाम विस्थापन

जैसे ही जंगलों से माओवादियों के पैर उखड़े, विकास की एक तेज और आक्रामक लहर वहां पहुंची है। कुतुल में इंटरनेट, पक्की सड़कें और आधार कार्ड का पहुँचना डिजिटल इंडिया का सपना तो है, लेकिन इस चमक के नीचे एक गहरा भय भी दबा है। आदिवासियों के भीतर यह शंका घर कर गई है कि विद्रोहियों को खदेड़ने का असली एजेंडा क्या है? क्या यह उनकी ज़मीन को 'कॉर्पोरेट खदानों' के लिए साफ करने की एक सोची-समझी साजिश है?

उन्हें डर है कि माओवादियों का 'जंगल राज' खत्म होने के बाद अब उन पर 'खनन राज' थोपा जाएगा। जंगल, जो उनका भगवान था और उनकी पहचान था, अब लोहे के अयस्क और बेशकीमती खनिजों के एक 'कच्चे माल' की तरह देखा जा रहा है। कुतुल की कहानी आज भारत के उस चौराहे की कहानी है, जहाँ एक तरफ डिजिटल इंडिया का भव्य सपना है और दूसरी तरफ अपनी जड़ों को बचाने की एक आखिरी जद्दोजहद। यदि जंगल से माओवाद खत्म होने के बाद वहां केवल जेसीबी मशीनें ही दिखेंगी, तो 'कॉमरेड अरब' जैसे लोग फिर से पैदा होने में देर नहीं लगाएंगे।

कुतुल के जंगलों से लाल साया भले ढल रहा हो, लेकिन सच्ची कहानी अब शुरू होती है—जहां बंदूकों की जगह बुलडोज़र ले सकते हैं और खौफ की जगह अनिश्चितता। सवाल वही है- क्या विकास आदिवासियों का होगा, या उनके ऊपर थोप दिया जाएगा?

क्या यह वाकई अंत है?

गृह मंत्रालय का 31 मार्च 2026 तक का लक्ष्य एक रणनीतिक और राजनीतिक बयानबाजी का मिश्रण है। 800 जिलों में से केवल सात में ही अब माओवाद की अंतिम सांसे चल रही हैं। लेकिन शांति का अर्थ केवल बंदूकों का शांत होना नहीं है। असली चुनौती यह है कि भारत उस आदिवासी विश्वास को कैसे बहाल करे, जो दशकों से राज्य और विद्रोहियों की इस 'क्रॉसफायर' में पिस रहा है। बंदूकें तो शांत हो जाएंगी, लेकिन अगर न्याय और सम्मान की स्थापना नहीं हुई, तो यह शांति एक 'अस्थायी युद्धविराम' से अधिक कुछ नहीं होगी।

कुतुल आज भारत के उस चौराहे पर खड़ा है, जहाँ उसे यह तय करना है कि वह अपनी जड़ों का सम्मान करता है या केवल खनिजों की खुदाई में अपनी समृद्धि देखता है। जंगल राज खत्म हो रहा है, लेकिन न्याय का राज स्थापित होना अभी बाकी है। बस्तर की फिजा बदल रही है, लेकिन उसका हृदय आज भी धड़कते हुए सवालों से भरा है। विकास आना चाहिए, लेकिन वह विकास आदिवासियों की शर्तों पर होना चाहिए, न कि कॉर्पोरेट घरानों की मशीनरी के नीचे। यह बस्तर के पुनर्निर्माण की अंतिम और सबसे कठिन लड़ाई है। ●

तेल तनाव तबाही

श्रीराजेश

पश्चिम एशिया की जलती रेत से उठती लपटें अब केवल एक क्षेत्रीय संघर्ष का संकेत नहीं, बल्कि अमेरिकी वैश्विक वर्चस्व के ढहते स्तंभों की गवाही दे रही हैं। एक ऐसी महाशक्ति की कहानी, जिसने युद्ध तो अपनी शर्तों पर शुरू किया, पर अब शांति की भीख मांग रही है।

राजनीति का अपना एक क्रूर व्याकरण होता है, और डोनाल्ड ट्रंप के दूसरे कार्यकाल की शुरुआत ने इस व्याकरण की सबसे विवादास्पद परिभाषा लिखी है। जब ट्रंप ने ओवल ऑफिस की कुर्सी संभाली थी, तब उनके पास दो तरह की विरासतें थीं, एक—अपनी पिछली 'मागा' (MAGA) लोकप्रियता का वह अनूठा जनादेश, और दूसरी—वह 'शांति-दूत' का मुखौटा जिसे उन्होंने चुनाव प्रचार के दौरान ओढ़ रखा था। उन्होंने वादा किया था कि वे 'एंडलेस वॉर्स' के उस युग को समाप्त कर देंगे, जिसे वाशिंगटन के 'एलीट्स' ने दशकों तक पाला-पोसा था।

लेकिन 2026 की यह वसंत ऋतु एक अलग ही यथार्थ लेकर आई है। आज वाशिंगटन के गलियारों में 'शांति' के बजाय बारूद की गंध अधिक तेज है। ट्रंप ने दुनिया को एक 'ट्रांजैक्शनल वर्ल्डव्यू' से देखने का दावा किया था—जहां हर नीति एक डील है, हर युद्ध एक बैलेंस-शीट है, और हर अंतरराष्ट्रीय समझौता केवल अमेरिकी लाभ के लिए है। लेकिन ईरान के साथ छिड़े

इस संघर्ष ने यह साबित कर दिया है कि भू-राजनीति कोई ऐसी 'रियल एस्टेट डील' नहीं है जिसे एक हस्ताक्षर से सुलझाया जा सके। यह एक ऐसी शतरंज है जहां मोहरे खुद अपनी चाल चलने लगे हैं, और खिलाड़ी, जिसने खेल शुरू किया था, अब खुद अपने बिछाए जाल में उलझ गया है। ट्रंप का वह 'ग्रैंड इल्यूजन'—कि वे दुनिया को अपनी शर्तों पर चला सकते हैं—आज उस तेल के धुएं में ओझल हो चुका है जो ईरान के तटों से उठकर पूरे वैश्विक बाजार को धुंधला कर रहा है।

आज वाशिंगटन के गलियारों में 'शांति' के बजाय बारूद की गंध अधिक तेज है। ट्रंप ने दुनिया को एक 'ट्रांजैक्शनल वर्ल्डव्यू' से देखने का दावा किया था—जहां हर नीति एक डील है, हर युद्ध एक बैलेंस-शीट है, और हर अंतरराष्ट्रीय समझौता केवल अमेरिकी लाभ के लिए है। लेकिन इस संघर्ष ने यह साबित कर दिया है कि भू-राजनीति कोई ऐसी 'रियल एस्टेट डील' नहीं है जिसे एक हस्ताक्षर से सुलझाया जा सके।

पश्चिम एशिया की बिसात

अमेरिका–ईरान संघर्ष का मूल 'डिकैपिटेशन स्ट्राइक' की उस सनकी रणनीति में निहित है, जिसे पेंटागन के कुछ 'हॉक' सलाहकारों ने ट्रंप को सुझाया था। तर्क सरल था- ईरान का नेतृत्व, विशेषकर अयातुल्ला के इर्द-गिर्द का वह कट्टरपंथी घेरा, यदि खत्म कर दिया जाए, तो ईरान की पूरी 'रेजिम' ताश के पत्तों की तरह ढह जाएगी।

यह रणनीति अपने आप में एक 'सिनेमाई फंतासी' थी। वाशिंगटन के सिचुएशन रूम में बैठे रणनीतिकारों ने शायद 'सन त्ज़ु' की 'आर्ट ऑफ वॉर' तो पढ़ी थी, लेकिन उन्होंने पश्चिम-एशिया की उन गहराइयों को समझने की जहमत नहीं उठाई जो केवल नक्शों पर नहीं, बल्कि सदियों पुरानी विचारधाराओं की बुनियाद पर टिकी हैं। अमेरिका ने सोचा था कि शीर्ष नेतृत्व को हटाकर वह 'डेमोक्रेसी' का एक नया बीज रोपेगा। लेकिन परिणाम? परिणाम वही था जो अक्सर होता है—जब आप किसी मधुमक्खी के छत्ते पर हाथ मारते हैं, तो शहद नहीं मिलता, सिर्फ डंक मिलते हैं।

ईरान का सत्ता ढांचा कोई अकेला खड़ा वृक्ष नहीं है जिसे एक कुल्हाड़ी से गिराया जा सके; यह एक 'हाइड्रा' है। आप उसका एक सिर काटते हैं, दो नए और अधिक कट्टर सिर उग आते हैं। तेहरान की गलियों में अमेरिका विरोधी भावनाएं मरने के बजाय, एक 'शहीद' की ऊर्जा के साथ पुनर्जीवित हो गईं। अमेरिका जिस शासन परिवर्तन की अपेक्षा कर रहा था, वह एक कठोर 'रेजिम हार्डनिंग' में बदल गया। यह रणनीतिक विफलता का पहला बड़ा

मोड़ था- अमेरिका ने एक ऐसे दुश्मन को और अधिक खतरनाक बना दिया जिसे वह 'समाप्त' करने निकला था।

'पॉवर वैक्यूम' और ट्रंप का 'एजेंसलॉस' क्षण

अफगानिस्तान से उस 'जल्दबाजी वाली निकासी' ने एक ऐसा शून्य पैदा किया था, जिसे भरने के लिए दुनिया की कोई भी महाशक्ति तैयार नहीं थी। ईरान, जिसने वर्षों से पर्दे के पीछे से अपनी ताकत बढ़ाई थी, उसने इस शून्य को एक अवसर के रूप में देखा। लेकिन विडंबना यह है कि ट्रंप प्रशासन ने इस उभार को रोकने के बजाय, इसे अपने 'इजरायली एजेंडे' के साथ जोड़ दिया। अमेरिका ने सोचा था कि वह इजरायल का 'प्रॉक्सी' बनकर ईरान को काबू में कर लेगा। लेकिन यहां एक गंभीर 'कैलकुलेशन एरर' हुआ। ट्रंप ने यह नहीं समझा कि इजरायल की अपनी प्राथमिकताएं—विशेषकर 'ग्रेटर इजरायल' का वह विस्तारवादी सपना—अमेरिकी हितों से अलग हो सकती हैं। लेबनान में जमीनी घुसपैठ ने ईरान को एक बहाना दे दिया। अचानक, अमेरिका एक ऐसे युद्ध में था जिसके नियम उसने नहीं बनाए थे। वह 'मूक दर्शक' से 'सक्रिय भागीदार' बनने की उस दहलीज पर खड़ा हो गया जहां से लौटने का रास्ता अब बंद हो चुका था।

यह 'एजेंसलॉस' (निर्णय लेने की शक्ति का अभाव) का क्षण था। पेंटागन के मानचित्रों पर यह युद्ध एक 'सर्जिकल स्ट्राइक' लग रहा था, लेकिन हकीकत में यह एक 'असीमित युद्ध' का दलदल साबित हुआ। ट्रंप का वह अहंकार—कि वे 'सुपरपावर' के संचालक हैं—अब उनके लिए सबसे बड़ा बोझ बन गया है। वे न तो इजरायल को रोक पा रहे है, न ईरान को हरा पा रहे है, और न ही खुद को युद्ध से अलग कर पा रहे है।

अमेरिकी मध्यस्थता का 'हॉलो कार्ड'

इस वैश्विक शतरंज की बिसात पर एक ऐसा क्षण भी आया, जिसे ट्रंप प्रशासन अपनी 'सक्सेस स्टोरी' के रूप में बेचना चाहता था। सितंबर 2025 के बाद के महीनों में, ट्रंप ने बड़े ही नाटकीय अंदाज में खुद को भारत और पाकिस्तान के बीच 'शांति-दूत' घोषित किया। व्हाइट हाउस के प्रेस ब्रिफिंग में जिस तरह से ट्रंप ने यह दावा किया कि वे दोनों एशियाई परमाणु शक्तियों को युद्ध की दहलीज से पीछे ले आए हैं, वह उस पुराने 'अमेरिकन अपवादवाद' का उदाहरण था—यह मान लेना कि दुनिया की हर समस्या का समाधान वाशिंगटन के किसी डेस्क पर बैठकर किया जा सकता है।

लेकिन हकीकत में, नई दिल्ली ने इस तथाकथित मध्यस्थता को एक 'हास्यास्पद विफलता' से अधिक कुछ नहीं माना। भारत की 'स्मार्ट चुप्पी' और कूटनीतिक दूरी ने ट्रंप के उस दावे की हवा निकाल दी। वास्तविकता यह थी कि दक्षिण एशिया में शांति का श्रेय किसी अमेरिकी फोन कॉल को नहीं, बल्कि उस कठोर 'यथार्थवाद' को जाता है, जो परमाणु हथियारों की मौजूदगी में स्वतः उत्पन्न होता है। यह घटना साबित करती है कि ट्रंप प्रशासन की 'डिप्लोमैटिक टूलकिट' अब आउटडेटेड हो चुकी है। ट्रंप जिस 'डील मेकिंग' की शेखी बघार रहे थे, वह इस जटिल और बहुध्रुवीय दुनिया में अब बेअसर साबित हो रही है। अमेरिका आज भी 20वीं सदी के उस चश्मे से 21वीं सदी के 'एशियाई उभार' को देख रहा है, जहां उसकी 'मध्यस्थता' की मांग कोई नहीं करता, बस उसकी उपस्थिति को एक 'परेशानी' के रूप में देखा जाता है।

घरेलू 'MAGA' का बिखरता आइना

अगर आप अमेरिका के मध्य-पश्चिम के किसी छोटे शहर की सड़क पर खड़े हों, तो आपको वहां 'MAGA' के झंडे आज भी

फहराते दिख सकते हैं, लेकिन उनकी चमक अब फीकी पड़ चुकी है। यह वह वर्ग था जिसने ट्रंप को 'एंटी-एस्टेब्लिशमेंट' योद्धा के रूप में वोट दिया था। उन्हें वादा किया गया था कि अमेरिका अपने संसाधनों को बाहरी युद्धों में खर्च करना बंद करेगा और घरेलू समृद्धि पर ध्यान देगा।

लेकिन ईरान के साथ छिड़े इस युद्ध ने उस 'आर्थिक राष्ट्रवाद' के गुब्बारे की हवा निकाल दी है। युद्ध की कीमत केवल पेंटागन के बजट में नहीं, बल्कि उन अमेरिकी परिवारों के किचन में महसूस की जा रही है, जो पेट्रोल और बिजली के बढ़ते दामों के नीचे पिस रहे हैं। टैरिफ युद्ध और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में आए व्यवधान ने अमेरिकी उत्पादन को एक ऐसी आग में झोंक दिया है जहां लागत तो बढ़ रही है, लेकिन मुनाफा शून्य हो गया है।

विशेष रूप से किसान, जो ट्रंप के सबसे वफादार वोट बैंक का आधार थे, अब अपने गोदामों में भरे अनाज और गिरती वैश्विक मांग के बीच अपनी तबाही देख रहे हैं। यह एक ऐसी विडंबना है जो किसी भी राजनीतिक विश्लेषक को दहला दे—एक ऐसा नेता जिसने 'अमेरिका फर्स्ट' का नारा दिया था, अब उसी अमेरिका के आम नागरिक के लिए 'महंगाई का एजेंट' बन बैठा है। मिड-टर्म चुनावों की आहट के साथ ही, ट्रंप की लोकप्रियता का ग्राफ उस ढलान पर है जिसे रोकना अब उनके 'पॉपुलिस्ट' भाषणों के बस की बात नहीं रही। यह एक 'क्लासिक' राजनीतिक पतन का परिदृश्य है—जहां 'मजबूत नेता' की छवि उसके अपने बनाए युद्ध की भट्टी में ही पिघलने लगी है।

'यूनी-पोलर' भ्रम बनाम 'मल्टी-पोलर' हकीकत

अमेरिका–ईरान का यह संघर्ष केवल दो देशों के बीच नहीं है- यह उस 'यूनी-पोलर' (एक-ध्रुवीय) विश्व व्यवस्था के अंतिम संस्कार की तरह है, जिसे अमेरिका 1991 के बाद से चला रहा था। ट्रंप का भ्रम था कि वे रूस और चीन को नियंत्रित कर लेंगे और मध्य-पूर्व को अपनी शर्तों पर स्थिर करेंगे। लेकिन हकीकत में, ट्रंप की ईरान नीति ने रूस और चीन को एक-दूसरे के और करीब लाकर खड़ा कर दिया है।

आज, बीजिंग अपनी 'सिल्क रोड' की सुरक्षा के लिए तेहरान के साथ खड़ा है, और मास्को अपनी सामरिक जरूरतों के लिए ईरान के 'ड्रोन-नेटवर्क' का इस्तेमाल कर रहा है। ब्रिक्स जैसे मंच अब केवल आर्थिक संगठन नहीं रहे; वे उस 'एंटी-वेस्ट' गठबंधन की धुरी बन चुके हैं, जो अमेरिकी प्रतिबंधों को ठेंगा दिखा रहे हैं। अमेरिका की 'प्रतिबंध नीति' अब उसका सबसे बड़ा हथियार नहीं, बल्कि उसकी सबसे बड़ी कमजोरी बन गई है। यह एक ऐसी दुनिया है जहां डॉलर आधारित अर्थव्यवस्था को अब 'पेट्रो-युआन' और अन्य मुद्राओं से चुनौती मिल रही है। अमेरिका ने ईरान को अलग-थलग करने के बजाय, दुनिया को दो स्पष्ट खेमों में बांट दिया है।

एक महाशक्ति का 'एग्जिट-लेस' ट्रैप

हम आज इतिहास के उस मोड़ पर हैं जहां 'शक्ति' का अर्थ बदल गया है। ट्रंप का यह 'जुआ' इतिहास के पन्नों में उनकी रणनीतिक अदूरदर्शिता के सबसे बड़े स्मारक के रूप में दर्ज होगा।

एक ऐसी महाशक्ति जो पूरी दुनिया को 'निर्देशित' करना चाहती थी, आज वह केवल अपनी ही गलतियों के मलबे से निकलने का रास्ता ढूंढ रही है। 'रणनीतिक अति-विस्तार' का यह वह 'डार्क साइड' है जिसे नजरअंदाज करना अब संभव नहीं है। अमेरिका ने 'शतरंज' खेलना तो चाहा, लेकिन उसने यह नहीं देखा कि वह जिस बोर्ड पर खेल रहा है, वह बोर्ड ही अब उसके हाथ से फिसलता जा रहा है। ट्रंप का 'मागा' सपना, जो कभी

आशा की किरण था, अब एक ऐसे युद्ध में फंस गया है जहां 'एंट्री' आसान थी, लेकिन 'एग्जिट' का रास्ता किसी को नहीं पता। यह उस महाशक्ति का पतन है, जो जीतने के लिए खेल रही थी, लेकिन अब केवल 'हार को टालने' की एक अंतहीन और दर्दनाक कोशिश कर रही है।

तेल का खेल

आधुनिक सभ्यता का कोई भी 'पावर ग्रिड' या 'डिजिटल इकॉनोमी' बिना एक अदृश्य इंजन के नहीं चलती- कच्चा तेल (क्रूड ऑयल)। अमेरिका–ईरान का यह संघर्ष इस बात का प्रमाण है कि 21वीं सदी की महाशक्तियां भले ही 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' और 'स्पेस-रेस' की बातें करें, लेकिन उनकी पूरी सामरिक नींव आज भी तेल के उन्हीं कुओं पर टिकी है।

मार्च 2026 तक, वैश्विक तेल उत्पादन 102.4 मिलियन बैरल प्रतिदिन के स्तर पर है। लेकिन, इस उत्पादन का 30% हिस्सा उस 'हॉटस्पॉट' से आता है जिसे हम पश्चिम एशिया कहते हैं। ईरान का रणनीतिक महत्व केवल उसके भंडार में नहीं है, बल्कि उस 'हॉर्मुज जलडमरूमध्य' में है, जो वैश्विक तेल व्यापार का गला है। यहां से गुजरने वाला 21% वैश्विक तेल आपूर्ति का डेटा किसी भी सांख्यिकीविद् के लिए चिंता का विषय नहीं, बल्कि एक डरावनी फिल्म की स्क्रिप्ट जैसा है।

ट्रंप का 'MAGA' नारा उस समय सबसे बड़ा मजाक बन जाता है जब अमेरिकी पंपों पर पेट्रोल की कीमतें 6 डॉलर प्रति गैलन को पार कर जाती हैं। ऊर्जा केवल एक संसाधन नहीं, यह राजनीति का वह 'अल्फा और ओमेगा' है जो किसी भी सरकार को बना या बिगाड़ सकता है। 2026 के इस दौर में, तेल की हर एक बूंद अब 'पॉलिटिकल कैपिटल्स' से मापी जा रही है।

ईरान का 'असममित' प्रहार

ईरान ने 2026 के इस युद्ध में एक ऐसी 'एसिमेट्रिक' रणनीति अपनाई है जिसे पेंटागन के पास कोई जवाब नहीं है। तेहरान ने यह समझ लिया है कि उसे अमेरिका की विशाल सैन्य मशीनरी से भिड़ने की जरूरत नहीं है, उसे केवल वैश्विक 'सप्लाई चेन' में एक 'अड़चन' पैदा करनी है।

सऊदी अरब के 'अबकैक' रिफाइनरी से लेकर यूएई के 'फुजैरा' टर्मिनल तक—ईरान ने अपने प्रॉक्सी ड्रोन और मिसाइल नेटवर्क्स के जरिए उन धमनियों पर वार किया है जो विश्व अर्थव्यवस्था को ऑक्सीजन देती हैं। कतर के एलएनजी निर्यात में आई 18% की गिरावट ने न केवल यूरोप के खर्चों के बिल बढ़ाए, बल्कि यह भी दिखाया कि 'ऊर्जा सुरक्षा' का भ्रम कितना नाजुक है।

यहां डेटा बोलता है - जिस दिन हॉर्मुज में दो टैंकरों को निशाना बनाया गया, ब्रेंट क्रूड की कीमतें 14 मिनट के भीतर 12 डॉलर उछल गईं। यह 'मार्केट वोलैटिलिटी' नहीं है- यह 'मार्केट पैनिक' है। अमेरिका का वह 'नेवल प्रेजेंस' जो दशकों तक इन रास्तों की रक्षा करता था, आज ईरान के छोटे ड्रोन के सामने असहाय है। यह तकनीकी श्रेष्ठता की हार नहीं, बल्कि 'भू-राजनीतिक भूगोल' की जीत है।

द पेट्रो-डॉलर डिक्लाइन

ट्रंप ने ईरान पर 'मैक्सिमम प्रेशर' लगाने के लिए जो प्रतिबंध लगाए थे, वे आज अमेरिका के लिए एक 'बूमरैंग' बन गए हैं। ईरान ने इन प्रतिबंधों को अपनी ताकत बना लिया। कैसे? तेहरान ने बीजिंग के साथ एक 25 वर्षीय 'स्ट्रैटेजिक पार्टनरशिप' साइन की, जिसमें तेल के बदले युआन का इस्तेमाल होता रहा है।

यह 'पेट्रो-डॉलर' के लिए एक गंभीर खतरा है। यदि ईरान

वैश्विक बाजार में प्रतिबंधों के बावजूद चीन और रूस के साथ मिलकर 'अंडरग्राउंड एनर्जी नेटवर्क' चलाता है, तो अमेरिका की 'वित्तीय महाशक्ति' की साख पर बट्टा लगता है। 2026 की पहली तिमाही के आंकड़ों के अनुसार, वैश्विक ऊर्जा व्यापार का लगभग 12% हिस्सा अब अमेरिकी डॉलर से हटकर अन्य मुद्राओं या 'बार्टर' (वस्तु-विनिमय) के जरिए हो रहा है। यह केवल आर्थिक डेटा नहीं है- यह उस 'ग्लोबल ऑर्डर' का विखंडन है, जिसे अमेरिका ने 1944 के 'ब्रेटन वुड्स' समझौते के बाद बनाया था। ट्रंप की जिद थी कि ईरान को घुटनों पर ला देंगे, लेकिन हकीकत में उन्होंने ईरान को उन देशों के करीब धकेल दिया जो खुद अमेरिका के प्रभुत्व से मुक्त होना चाहते हैं।

मंदी का 'परफेक्ट स्टॉर्म'

इस चरण का सबसे दर्दनाक हिस्सा आम आदमी है। ऊर्जा की कीमतों में हुई यह 40% की वृद्धि दुनिया को 1973 के उस 'ऑयल शॉक' की याद दिला रही है। दुनिया भर में उत्पादन लागत 22% बढ़ गई है। वैश्विक माल ढुलाई में हुई वृद्धि ने उपभोक्ता वस्तुओं को आम आदमी की पहुंच से बाहर कर दिया है।

अमेरिका में सीपीआई का 9% को छूना कोई संयोग नहीं है, यह उस युद्ध की 'कॉस्ट ऑफ वॉर' है जो ट्रंप ने अपनी राजनीति को चमकाने के लिए शुरू की थी। इतिहास गवाह है कि जब तेल की कीमतें मध्यम वर्ग के 'लाइफस्टाइल' को प्रभावित करती हैं, तो क्रांतियां होती हैं। मिड-टर्म चुनाव के आंकड़ों में ट्रंप की घटती लोकप्रियता का कारण उनकी विदेश नीति नहीं है—यह उनका 'पेट्रोल पंप' है।

ऊर्जा के 'अदृश्य' समीकरण

युद्ध की कोई एक कीमत नहीं होती, उसकी एक लंबी पूंछ होती है जिसे 'इकोनॉमिक शॉकवेव' कहा जाता है। 2026 की पहली छमाही में, वैश्विक जीडीपी में 1.4% की गिरावट का सीधा संबंध होर्मुज जलडमरूमध्य से गुजरने वाली ऊर्जा आपूर्ति में आए व्यवधान से है। तथ्य यह है कि अमेरिका का 'शेल ऑयल' उत्पादन, जिसे ट्रंप ने अपनी आर्थिक आत्मनिर्भरता का आधार माना था, वह भी इस वैश्विक संकट में 'हाशिए' पर आ गया है। वैश्विक बाजार में कच्चे तेल की कीमत $115 प्रति बैरल पर स्थिर होने का मतलब है कि हर अमेरिकी रिफाइनरी को अपनी 'ब्रेक-ईवन' लागत बढ़ानी पड़ी है।

यहां डेटा का खेल भी देखिए- 2024 में, अमेरिका प्रतिदिन 13.2 मिलियन बैरल तेल का उत्पादन कर रहा था। लेकिन 2026 के अप्रैल तक, उस उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा घरेलू खपत और यूरोपीय सहयोगियों की मांग के बीच बट गया है। ईरान ने ओपेक-प्लस की उन मीटिंग्स का फायदा उठाया है, जहां रूस और सऊदी अरब ने अमेरिका के प्रति अपनी 'रणनीतिक दूरी' को स्पष्ट कर दिया है। 2026 के मार्च का डेटा बताता है कि ओपेक-प्लस ने उत्पादन में 2.5 मिलियन बैरल प्रति दिन की कटौती की, जिसने अमेरिकी 'प्राइस-कैपिंग' की कोशिशों को

सीधे तौर पर नकार दिया।

पेट्रो-यूआन बनाम पेट्रो-डॉलर

यह लड़ाई केवल बंदूक और मिसाइल की नहीं है। यह 'रिजर्व करेंसी' के अस्तित्व की है। ईरान के साथ युद्ध ने वैश्विक वित्तीय ढांचे की उस कमजोरी को उजागर किया है, जिसे वाशिंगटन के अर्थशास्त्री 'डॉलर हेजमनी' कहते थे।

चीन ने ईरान को एक 'लाइफलाइन' दी है। 'ईरान-चीन 25-वर्षीय सहयोग समझौते' के तहत, बीजिंग अब ईरान से तेल खरीद का 60% हिस्सा 'डिजिटल युआन' में चुका रहा है। यह अमेरिकी प्रतिबंधों के 'सॉफ्ट-पावर' को सीधे चुनौती है। 2026 के आंकड़ों के अनुसार, पश्चिम एशिया के तेल व्यापार का 18% हिस्सा अब सीधे 'डॉलर' के बजाय 'यूआन' या 'लोकल करेंसी बास्केट' में हो रहा है। अमेरिका के लिए यह एक 'मौन लेकिन घातक' प्रहार है। यदि वैश्विक ऊर्जा व्यापार में डॉलर की हिस्सेदारी 80% से गिरकर 70% तक आती है, तो अमेरिकी ट्रेजरी बांड्स की मांग कम होगी, जिससे अमेरिका के अपने राष्ट्रीय ऋण का प्रबंधन करना नामुमकिन हो जाएगा। ट्रंप ने ईरान को 'ब्लैकमेल' करने के लिए युद्ध शुरू किया, लेकिन वह 'ग्लोबल फाइनेंशियल आर्किटेक्चर' को ही दांव पर लगा बैठे।

रिफाइनरी और लॉजिस्टिक्स

ऊर्जा संकट केवल 'तेल' की कमी नहीं है; यह 'रिफाइंड प्रोडक्ट्स' (जैसे डीजल और जेट फ्यूल) की कमी है। ईरान ने अपनी रणनीति के तहत खाड़ी के उन 'चौक-पॉइंट्स' को निशाना बनाया जो कच्चा तेल ले जाने वाले टैंकरों के 'रिफाइनरी हब' के पास हैं। डेटा बताता है कि 2026 के फरवरी और मार्च के बीच, वैश्विक स्तर पर 'शिपिंग इंश्योरेंस प्रीमियम' में 400% का उछाल आया। बीमा कंपनियों ने ईरान के आसपास के समुद्री मार्गों को 'हाई-रिस्क जोन' घोषित कर दिया है। इसका असर क्या हुआ? एक टैंकर को होर्मुज से निकलने के लिए अब 30% अधिक लंबी दूरी तय करनी पड़ रही है। इस अतिरिक्त 'रूटिंग' ने न केवल तेल की अंतिम लागत को बढ़ाया है, बल्कि वैश्विक खाद्य श्रृंखला (जो डीजल पर चलती है) में मुद्रास्फीति की एक और लहर पैदा की है।

'ग्रीन-ट्रांजिशन' का अंत

ऊर्जा संकट का एक और भयावह पहलू 'ग्रीन-एजेंडा' की बलि है। यूरोप, जो 'नेट-जीरो' की ओर बढ़ रहा था, आज वापस कोयले और पुरानी गैस रिफाइनरियों की ओर मुड़ गया है। 2026

के पहले चार महीनों का डेटा दिखाता है कि यूरोप में कोयले की खपत 2021 के स्तर से 25% अधिक हो गई है।

यह युद्ध 'क्लाइमेट चेंज' की उन सभी वार्ताओं को एक झटके में पीछे ले गया है। जब अर्थव्यवस्था 'सर्वाइवल मोड' में होती है, तो पर्यावरण का एजेंडा टेबल से हट जाता है। यह ट्रंप की एक और अप्रत्याशित हार है—वह 'ऊर्जा स्वतंत्रता' के नाम पर आए थे, लेकिन उन्होंने दुनिया को एक ऐसी 'जीवाश्म ईंधन-केंद्रित' युद्ध-नीति में धकेल दिया है, जहां आने वाले एक दशक तक पर्यावरण की प्रगति असंभव है।

भारत और अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं पर प्रभाव

भारत, जिसका ऊर्जा बिल 85% आयात पर निर्भर है, इस स्थिति का 'कोलेटरल डैमेज' झेल रहा है। 2026 के पहले क्वार्टर में भारत का व्यापार घाटा $25 बिलियन का आंकड़ा पार कर गया है। 'तेल की कीमतों में प्रति बैरल $10 की वृद्धि', भारत की जीडीपी ग्रोथ को 0.5% कम कर देती है। यह केवल भारत की बात नहीं है- दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ्रीका की उभरती अर्थव्यवस्थाएं इस ऊर्जा संकट के कारण 'ऋण संकट' की दहलीज पर खड़ी हैं। वे देश जो अभी-अभी महामारी से बाहर निकले थे, वे अब इस 'तेल-युद्ध' की भेंट चढ़ रहे हैं।

युद्ध की थाली: 'कैलोरी' बनाम 'क्रूड'

ऊर्जा संकट का सबसे क्रूर प्रभाव खाद्यान्न बाजारों पर पड़ा है। 2026 के आंकड़ों के अनुसार, वैश्विक खाद्य कीमतों में 22% की वृद्धि दर्ज की गई है। इसका कारण सीधे तौर पर ऊर्जा की लागत से जुड़ा है—नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों का उत्पादन प्राकृतिक गैस पर निर्भर है, और गैस की कीमतों में आए 150% के उछाल ने दुनिया भर के किसानों की कमर तोड़ दी है। मक्का, गेहूं और सोयाबीन जैसे मुख्य खाद्य पदार्थों की ढुलाई और कटाई की लागत अब आसमान छू रही है। मध्य-पूर्व और अफ्रीका के उन देशों में, जहां पहले से ही अस्थिरता थी, वहां अब 'ब्रेड-बंट' (रोटी का अकाल) एक नया राजनीतिक हथियार बन चुका है। ईरान युद्ध ने एक वैश्विक 'कैलोरी क्राइसिस' को जन्म दिया है, जिसने उन देशों को भी अपनी चपेट में ले लिया है जो प्रत्यक्ष रूप से युद्ध का हिस्सा नहीं थे।

चुनावी गणित: MAGA का 'परफेक्ट स्टॉर्म'

ट्रंप का 'मिड-टर्म' चुनावी गणित अब पूरी तरह से 'ब्रेक-ईवन' के आंकड़ों में सिमट कर रह गया है। 2026 के शुरुआती सर्वेक्षणों में ट्रंप की अप्रूवल रेटिंग 38% के अपने निचले स्तर पर है। इसका सबसे बड़ा कारण उनका वह आधारभूत वर्ग है जिसे 'ब्लू-कॉलर वर्कर' कहा जाता है।

डेटा यह संकेत दे रहा है कि ट्रंप के 'स्विंग स्टेट्स' (जैसे पेंसिल्वेनिया, मिशिगन, और विस्कॉन्सिन) में महंगाई ने उन वादों को निगल लिया है, जिनके दम पर उन्होंने 2024 में सत्ता हासिल की थी। ट्रंप के व्यापार युद्ध के कारण कृषि निर्यात में 35% की कमी आई है। जबकि 2026 के प्री-इलेक्शन पोल में स्पष्ट है कि 54% स्वतंत्र मतदाता अब ईरान संघर्ष को 'ट्रंप का व्यक्तिगत अहंकार' मानते हैं, न कि 'अमेरिका फर्स्ट' का मिशन।

ट्रंप के लिए चुनौती अब केवल युद्ध जीतना नहीं है, चुनौती यह है कि वे खुद को उस 'मजबूत नेता' के रूप में कैसे बचाएं जिसने घर में समृद्धि का वादा किया था, लेकिन बदले में मंदी का उपहार दिया। रिपब्लिकन पार्टी के भीतर की दरारें भी अब स्पष्ट हैं—पार्टी का 'नियो-कॉन' धड़ा और 'आइसोलेशनिस्ट' धड़ा आपस में भिड़ चुके हैं। ट्रंप के पास अब बस दो ही विकल्प बचे हैं- या तो युद्ध में एक 'आकस्मिक विजय' का नाटक करें, या फिर चुनावी हार की पटकथा लिखने के लिए तैयार रहें। यह वह 'परफेक्ट स्टॉर्म' है जहाँ ऊर्जा, भोजन, और राजनीति एक साथ मिलकर अमेरिकी महाशक्ति की साख को मिटा रहे हैं।

युद्धविराम की 'हताश' घोषणा

मार्च 2026 के अंत में, जब वाशिंगटन की 'सिचुएशन रूम' में ट्रंप ने पांच दिनों के 'अस्थायी युद्धविराम' की घोषणा की, तो वह केवल एक कूटनीतिक पहल नहीं थी—वह महाशक्ति की 'लॉजिस्टिकल थकान' का स्वीकारोक्ति पत्र था। डेटा बताता है कि अमेरिकी विमान-वाहक पोत पिछले छह महीनों से जिस गति से अपनी मिसाइलें और गोला-बारूद खर्च कर रहे थे, पेंटागन के पास अगले 90 दिनों के लिए भी 'हाई-प्रिसिजन वेपन्स' का स्टॉक शेष नहीं था।

यह 'सेफ एग्जिट' की तलाश किसी उदारता से नहीं, बल्कि 'डिप्लेशन' (संसाधन क्षय) से प्रेरित थी। युद्धविराम एक ऐसी 'वेंटिलेटर' की तरह है जिस पर ट्रंप ने खुद को और अपनी विदेशी नीति को डाल दिया है। लेकिन समस्या यह है कि जब आप युद्ध के बीच में रुकते हैं, तो आपका दुश्मन आपकी कमजोरी को पढ़ लेता है। ईरान के विदेश मंत्रालय का वह आधिकारिक बयान—'हम विराम नहीं, परिणाम चाहते हैं'—इस बात का संकेत है कि कूटनीति की मेज पर अब अमेरिका 'डिमांड-मेकर' नहीं, बल्कि 'बारगेनर' बन चुका है।

ईरान की शर्तें और वैश्विक संतुलन

ईरान ने वार्ता के लिए जो तीन शर्तें रखी हैं, वे ट्रंप के 'MAGA' विजन के लिए एक 'डार्क ह्यूमर' की तरह हैं। ईरान की मांग कि अमेरिका युद्ध के दौरान हुए बुनियादी ढांचे के नुकसान की भरपाई करे, अंतरराष्ट्रीय राजनीति में 'विक्टर की न्याय' को पलट देती है। यदि अमेरिका इसे स्वीकार करता है, तो यह विश्व मंच पर उसकी 'अजेयता' को पूरी तरह ध्वस्त कर देगा।

यह मांग भी कि अमेरिका भविष्य में ईरान पर हमला न करे, ट्रंप के लिए एक 'राजनीतिक आत्मघाती' कदम है। सीनेट और इजरायल समर्थक लॉबी के बीच फंसे ट्रंप, क्या ऐसी कोई भी गारंटी दे सकते हैं जो कल के किसी भी राष्ट्रपति द्वारा बदली न जा सके?

और यह सबसे बड़ा आर्थिक दांव है। यदि प्रतिबंध हटते हैं, तो ईरान की तेल आपूर्ति वैश्विक बाजार में 3-4 मिलियन बैरल प्रतिदिन की वृद्धि करेगी। यह 'सप्लाई-शॉक' तेल की कीमतों को $60 के स्तर तक गिरा सकता है, जो ट्रंप के 'शेल-ऑयल' उद्योग को दिवालिया बना देगा।

यहां कूटनीति का गणित यह है- ट्रंप एक युद्ध जीतना चाहते थे, लेकिन अब वे एक ऐसी शांति खरीद रहे हैं जो उनकी अपनी ही आर्थिक नीतियों को तबाह कर देगी।

क्या गठबंधन अब बोझ हैं?

ट्रंप ने जिस 'ग्रेटर इजरायल' गठबंधन को सुरक्षा कवच माना था, वही अब उनके लिए 'एग्जिट' का सबसे बड़ा कांटा बन गया है। 2026 के अप्रैल तक के आंकड़ों के अनुसार, इजरायल द्वारा किए गए ग्राउंड ऑपरेशंस ने अमेरिका को वैश्विक स्तर पर 'ह्यूमन राइट्स' के दावों के साथ अलग-थलग कर दिया है। नाटो के सदस्य देशों, विशेष रूप से फ्रांस और जर्मनी ने, ईरान के साथ 'सीक्रेट चैनल' खोल लिए हैं। यह डेटा-साक्ष्य है कि 'पश्चिमी एकता' अब एक मिथक है। नाटो के 32 देशों में से 22 देशों ने सार्वजनिक रूप से ईरान के साथ 'व्यापारिक निरंतरता' की वकालत की है। ट्रंप का कूटनीतिक 'एग्जिट' अब एक 'सोलो एक्ट' बन गया है—अमेरिका अकेला है, जो अपने ही द्वारा छेड़े गए युद्ध से निकलने का रास्ता ढूंढ रहा है, जबकि बाकी दुनिया अपनी अलग राह बना रही है।

'पश्चिमी एकता' अब एक मिथक है। नाटो के 32 देशों में से 22 देशों ने सार्वजनिक रूप से ईरान के साथ 'व्यापारिक निरंतरता' की वकालत की है। ट्रंप का कूटनीतिक 'एग्जिट' अब एक 'सोलो एक्ट' बन गया है—अमेरिका अकेला है, जो अपने ही द्वारा छेड़े गए युद्ध से निकलने का रास्ता ढूंढ रहा है, जबकि बाकी दुनिया अपनी अलग राह बना रही है।

'एग्जिट' का अर्थशास्त्र

कूटनीतिक सौदेबाजी में जो सबसे बड़ा 'ट्रंप कार्ड' ईरान खेल रहा है, वह है 'डी-डॉलरलाइजेशन'। ईरान ने स्पष्ट कर दिया है कि वह भविष्य के किसी भी समझौते में डॉलर को 'मीडियम ऑफ एक्सचेंज' के रूप में स्वीकार नहीं करेगा। यह ईरान की जीत नहीं, बल्कि उस 'बहुध्रुवीय दुनिया' की शुरुआत है जिसे रूस और चीन ने पिछले दो वर्षों में आकार दिया है।

डेटा स्पष्ट करते है- 2025 में वैश्विक केंद्रीय बैंकों के भंडार में डॉलर की हिस्सेदारी 58% थी, जो 2026 की पहली तिमाही में गिरकर 55% पर आ गई है। यह 3% की गिरावट अरबों डॉलर के 'कैपिटल फ्लाइट' का संकेत है। ट्रंप का युद्ध इस 'पलायन' का उत्प्रेरक बन गया है। कूटनीतिक समझौता चाहे जैसा भी हो, अमेरिकी डॉलर की वह 'शक्ति' जो दुनिया को कंट्रोल करती थी, अब पहले जैसी नहीं रहेगी।

इतिहास का अंतिम 'चेकमेट'

यह आवरण कथा हमें इस सत्य पर लाकर छोड़ती है कि 2026 का अमेरिका–ईरान युद्ध केवल एक भौगोलिक घटना नहीं है। यह 'पावर ट्रांजिशन' का एक 'हिंसक संक्रमण काल' है। ट्रंप का 'एग्जिट' चाहे कितना भी 'सम्मानजनक' क्यों न दिखे, इतिहास इसे एक 'रणनीतिक हार' के रूप में ही याद रखेगा। 'कूटनीतिक सौदेबाजी' का यह पूरा दौर केवल यह तय करने के लिए है कि अमेरिका को 'कितना' और 'क्या' गंवाना पड़ेगा।

दुनिया अब उस महाशक्ति के बिना जीना सीख रही है जो 20वीं सदी में 'शांति' और 'युद्ध' दोनों की ठेकेदार थी। ईरान के साथ अगर यह समझौता होता है तो केवल एक हस्ताक्षर ही होगा, लेकिन इसके पीछे की राख में जो दब चुका है, वह है—अमेरिकी वर्चस्व का अहंकार। 2026 वह साल है, जब दुनिया को यह समझ आया कि ट्रंप का 'मागा' सपना, हकीकत में एक 'ग्लोबल वेक-अप कॉल' था। युद्ध समाप्त हो सकता है, लेकिन वह 'भरोसा' जो वाशिंगटन पर था, वह शायद अब कभी वापस न आए। ●

अमेरिका

शक, शक्ति, संकट

अमेरिका आज अपनी ही बनाई शक्ति, गहराते अविश्वास और आंतरिक विभाजन के त्रिकोण में फंसा है। 'ट्रम्पवाद' की विरासत ने लोकतंत्र की नींव हिला दी है, और एक महाशक्ति अब अपने ही अस्तित्व के संकट से जूझ रही है।

अमेरिका आज एक ऐसी फिल्म के 'मिड-सीजन' जैसा है, जहां हीरो और विलेन का फर्क पूरी तरह मिट चुका है। डोनाल्ड ट्रम्प, जो व्हाइट हाउस के ओवल ऑफिस में अपनी दूसरी पारी खेल रहे हैं, अब केवल एक राष्ट्रपति नहीं हैं, वे एक 'इकोलॉजिकल फिनोमिना' बन चुके हैं। उनका दूसरा कार्यकाल उस 'अमेरिका फर्स्ट' नीति का चरमोत्कर्ष है, जिसने उदारवादी वैश्विक व्यवस्था के ताबूत में आखिरी कील ठोक दी है। यह वह दौर है जहां अमेरिका अपना 'ग्लोबल पुलिसमैन' वाला चश्मा उतार चुका है और एक ऐसे आत्ममुग्ध राष्ट्र में तब्दील हो गया है, जो अपने ही घर की आग बुझाने में असमर्थ है। यह परिदृश्य केवल चिंताजनक नहीं, बल्कि एक ऐसी रणनीतिक चुनौती है जहां दुनिया का महाशक्ति आज अपनी ही पहचान के संकट के भंवर में फंसा हुआ है।

'मागा' का कट्टरपंथी उत्तराधिकार

ट्रम्प का दूसरा कार्यकाल कोई सामान्य राजनीतिक वापसी नहीं, बल्कि अमेरिकी लोकतांत्रिक ढांचे का एक 'हार्ड-रीसेट' है। रिपब्लिकन पार्टी अब वह पुरानी 'ग्रैंड ओल्ड पार्टी' नहीं रही, जो कभी मुक्त व्यापार और अंतरराष्ट्रीय हस्तक्षेप का झंडाबरदार थी। आज की रिपब्लिकन पार्टी एक 'मागा' मशीन है, जिसका ईंधन वाशिंगटन के 'अभिजात वर्ग' के प्रति नफरत और कट्टर राष्ट्रवाद है।

संस्थानों के प्रति अविश्वास अब अमेरिका का नया धर्म बन चुका है। ट्रम्प ने एफबीआई, न्यायपालिका और चुनाव आयोग जैसे संस्थानों को जिस तरह से 'पॉलिटिसाइज' किया है, उसने अमेरिकी लोकतंत्र की आत्मा को ही झकझोर दिया है। भारत के लिए यह सबसे बड़ा खतरा है। हम एक ऐसे अमेरिका के साथ साझेदारी की उम्मीद कर रहे हैं, जहां 'ट्रम्पवाद' का अर्थ ही यह है कि कोई भी अंतरराष्ट्रीय समझौता, कोई भी संधि तब तक मान्य है जब तक ट्रम्प के निजी हितों की पूर्ति होती रहे। यह अनिश्चितता एक ऐसी अस्थिरता है जो किसी भी समझौते को रातों-रात रद्दी की टोकरी में डालने की ताकत रखती है।

'अमेरिका फर्स्ट' का वैश्विक प्रभाव

ट्रम्प ने दुनिया को वह सच दिखाया जिसे अमेरिका हमेशा छिपाता रहा था - 'हम यहां परोपकार के लिए नहीं, अपनी जेब भरने के लिए बैठे हैं।' उनके दूसरे कार्यकाल ने नाटो को एक 'ज़ोम्बी' की तरह छोड़ दिया है, जो केवल नाम का गठबंधन रह गया है।

यूरोप को यह समझ आ गया है कि वे सुरक्षा के लिए अब हमेशा अमेरिका पर निर्भर नहीं रह सकते। अब अमेरिका अपनी सेनाओं को अटलांटिक से हटाकर हिंद-प्रशांत की ओर केंद्रित कर रहा है, लेकिन यह कोई 'भारत-प्रेम' नहीं है। यह चीन के बढ़ते ड्रैगन को रोकने की एक 'रणनीतिक विवशता' है।

भारत को यह समझना होगा कि अमेरिका का 'अलगाववाद' अब उसकी स्थायी नीति है। वह अपनी टैरिफ दीवारों को ऊंचा कर रहा है, और 'डी-कपलिंग' का अर्थ है कि अमेरिका अपनी तकनीक और नौकरियां किसी भी हाल में बाहर नहीं जाने देगा। ट्रम्प का दूसरा कार्यकाल भारत के लिए एक तलवार की धार पर चलने जैसा है—जहां रक्षा और तकनीक में सहयोग तो बढ़ेगा, लेकिन आर्थिक मोर्चे पर हमें 'अमेरिका फर्स्ट' की मार झेलने के लिए भी तैयार रहना होगा।

चीन के साथ 'परमानेंट कोल्ड वॉर'

ट्रम्प के दूसरे कार्यकाल में चीन के खिलाफ 'ट्रेड वॉर' अब एक 'परमानेंट कोल्ड वॉर' में बदल चुका है। यहां एक सुखद संयोग यह है कि चीन के प्रति नफरत पर पूरा अमेरिकी तंत्र एकमत है। भारत-अमेरिका तकनीक साझेदारी इसी ठंडे युद्ध का एक उत्पाद है। अमेरिका अब तकनीक का हस्तांतरण कर रहा है, लेकिन इसके पीछे उसकी मंशा भारत को एक 'टेक्नोलॉजी चौकी' के रूप में तैयार करना है, जो चीन के डिजिटल प्रभुत्व को काउंटर कर सके।

भारत इस खेल में एक 'हाई-स्टेक प्लेयर' है। इंजन टेक्नोलॉजी से लेकर सेमीकंडक्टर्स तक, अमेरिका भारत को एक 'ट्रस्टेड इकोसिस्टम' बनाना चाहता है। क्या हम चीन के खिलाफ अमेरिका के मोहरे हैं, या हम अपनी संप्रभुता के लिए अमेरिका को इस्तेमाल कर रहे हैं? यह रेखा बहुत महीन है। ट्रम्प के दूसरे कार्यकाल में यह 'तकनीकी धर्मयुद्ध' और अधिक क्रूर होने वाला है, जहां दुनिया दो स्पष्ट डिजिटल ब्लॉकों में बंट जाएगी।

एक देश, दो दुनिया

ट्रम्प का दूसरा कार्यकाल अमेरिकी समाज को 'मानसिक रूप से' दो हिस्सों में बांट चुका है। तटीय शहरों का उदारवादी

अमेरिका और भीतरी राज्यों का कट्टरपंथी अमेरिका—ये दो अलग राष्ट्र हैं जो एक ही पासपोर्ट का इस्तेमाल करते हैं। नस्ल, लिंग और पहचान की राजनीति ने संवाद की हर संभावना को 'ब्लॉक' कर दिया है।

सोशल मीडिया एल्गोरिदम ने अमेरिकी समाज को 'पोस्ट-ट्रुथ' दौर में धकेल दिया है, जहां तथ्य नहीं, केवल धारणाएं शासन करती हैं। भारतीय प्रवासियों के लिए यह 'पहचान का संकट' है। एक तरफ आप अमेरिका की तरक्की का हिस्सा हैं, और दूसरी तरफ आपको एक 'विदेशी' के रूप में देखा जा रहा है। यह सामाजिक विखंडन अमेरिका की उस 'सॉफ्ट पावर' को खत्म कर रहा है, जिसका उपयोग वह दुनिया को 'लोकतंत्र' सिखाने में करता था। अब अमेरिका खुद एक 'केस स्टडी' है कि कैसे एक महान साम्राज्य अंदर से सड़ता है।

आत्मनिर्भरता ही एकमात्र रास्ता

ट्रम्प का दूसरा कार्यकाल 'अनिश्चितता' का दूसरा नाम है। भारत को यह समझ लेना चाहिए कि अमेरिका अब वह 'स्थिर साझीदार' नहीं है जिस पर 90 के दशक में भरोसा किया जा सकता था। आज का अमेरिका एक ऐसी महाशक्ति है जो अपनी ही परछाईं से डर रही है। रक्षा और तकनीक में साझेदारी बढ़ेगी क्योंकि अमेरिका को चीन के खिलाफ भारत की जरूरत है, लेकिन वीजा और प्रवासन जैसे मामलों में 'अमेरिका फर्स्ट' की तलवार हमेशा लटकी रहेगी। हमें अब अपनी सुरक्षा, अपनी अर्थव्यवस्था और अपनी तकनीक के लिए वाशिंगटन की ओर टकटकी लगाकर नहीं देखना है। ट्रम्प भले ही व्हाइट हाउस में विराजमान हों, लेकिन उन्होंने जिस 'पेंडोरा बॉक्स' को खोल रखा है, उसमें से निकली अराजकता वैश्विक राजनीति के नियमों को हमेशा के लिए बदल चुकी है।

घायल महाशक्ति की त्रासदी

ट्रम्प का दूसरा कार्यकाल एक ऐसी फिल्म का हिस्सा है, जिसका अंत अभी लिखा जाना बाकी है। अमेरिका आज वह घायल महाशक्ति है, जो अपनी ही महत्वाकांक्षाओं के बोझ तले दबी है। भारत के लिए सबक स्पष्ट है—रणनीतिक साझेदारी जरूरी है, लेकिन 'निर्भरता' आत्मघाती है। दुनिया ने देख लिया है कि अमेरिकी लोकतंत्र कितना नाजुक है। ट्रम्प का यह दौर केवल एक राष्ट्रपति का कार्यकाल नहीं, बल्कि एक युग के अंत की शुरुआत है। आने वाला समय गठबंधन का नहीं, बल्कि 'रणनीतिक स्वार्थों' का है। 2028 तक का यह सफर विश्व के लिए अग्निपरीक्षा जैसा है, जहां अमेरिका अपने ही भीतर के तूफानों से लड़ रहा है और भारत को अपनी राह खुद बनानी है। ●

तेल युग के बाद

पारुल बख्शी

खाड़ी क्षेत्र अब केवल तेल का पर्याय नहीं रहा। स्वच्छ ऊर्जा, हाइड्रोजन और बहु-ऊर्जा निर्यात के नए मॉडल के साथ वह वैश्विक ऊर्जा व्यवस्था में अपनी भूमिका को पुनर्परिभाषित कर रहा है—जहाँ भविष्य 'बैरल' नहीं, बल्कि 'अणुओं' से तय होगा।

लगभग पिछले पचास वर्षों तक खाड़ी क्षेत्र का भू-राजनीतिक प्रभाव मुख्य रूप से कच्चे तेल के निर्यात पर आधारित रहा। तेल से भरे विशाल टैंकर खाड़ी देशों से निकलकर दुनिया के विभिन्न हिस्सों तक ऊर्जा पहुँचाते थे, और इसी के माध्यम से इस क्षेत्र की वैश्विक राजनीति और अर्थव्यवस्था में मजबूत भूमिका बनी रही। कच्चे तेल का व्यापार न केवल आर्थिक शक्ति का स्रोत था, बल्कि अंतरराष्ट्रीय संबंधों और रणनीतिक महत्व का भी आधार बन गया था।

हालाँकि अब वैश्विक ऊर्जा प्रणाली धीरे-धीरे बदल रही है। स्वच्छ और कम-कार्बन ऊर्जा की बढ़ती मांग के साथ खाड़ी क्षेत्र भी अपनी ऊर्जा रणनीति को नए रूप में ढाल रहा है। आज इसका प्रभाव केवल तेल तक सीमित नहीं रह गया है। द्रवीकृत प्राकृतिक गैस के कार्गो, हाइड्रोजन के अणु, स्वच्छ ऊर्जा वाहक और कार्बन प्रबंधन समाधान ऊर्जा व्यापार के नए साधन बन रहे हैं।

इसके अलावा सीमाओं के पार बिजली का निर्यात भी ऊर्जा सहयोग का एक उभरता हुआ माध्यम बन रहा है। इस परिवर्तन

के साथ खाड़ी क्षेत्र वैश्विक ऊर्जा प्रणाली में अपनी भूमिका को नए और अधिक विविध रूप में स्थापित करने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। हाइड्रोकार्बन को पूरी तरह छोड़ने के बजाय खाड़ी देश स्वयं को बहु-ऊर्जा निर्यातक के रूप में पुनर्स्थापित कर रहे हैं। वे अपने प्राकृतिक संसाधनों, संप्रभु पूँजी और रणनीतिक भौगोलिक स्थिति को भविष्य के वैश्विक ऊर्जा व्यापार में दीर्घकालिक प्रभाव में बदलने की कोशिश कर रहे हैं। यह उभरता हुआ निर्यात मॉडल तीन स्थायी लाभों पर आधारित है।

पहला, खाड़ी क्षेत्र के पास विशाल हाइड्रोकार्बन भंडार के साथ-साथ दुनिया के सबसे प्रतिस्पर्धी सौर और पवन ऊर्जा संसाधन भी हैं, जिससे पारंपरिक और कम-कार्बन ऊर्जा प्रणालियों में एक साथ निवेश संभव हो जाता है। दूसरा, सॉवरेन वेल्थ फंड और राज्य-स्वामित्व वाली ऊर्जा कंपनियाँ धैर्यपूर्ण पूँजी प्रदान करती हैं, जिससे बड़े पैमाने की अवसंरचना—जैसे एलएनजी संयंत्र, परमाणु ऊर्जा संयंत्र, हाइड्रोजन केंद्र और कार्बन कैप्चर नेटवर्क—को वित्तपोषित किया जा सकता है। तीसरा, यूरोप, एशिया और अफ्रीका के बीच

स्थित इस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति इसे ऊर्जा व्यापार के लिए एक प्राकृतिक गलियारा बनाती है। इन सभी कारणों से खाड़ी क्षेत्र केवल ऊर्जा परिवर्तन के अनुरूप ढल ही नहीं रहा, बल्कि इसके उभरते व्यावसायिक ढाँचे को आकार भी दे रहा है।

एलएनजी: खाड़ी के ऊर्जा निर्यात का स्थायी आधार

एलएनजी (द्रवीकृत प्राकृतिक गैस) खाड़ी के विकसित हो रहे निर्यात मॉडल का सबसे परिपक्व और व्यावसायिक रूप से सुरक्षित स्तंभ बना हुआ है। यह हाइड्रोकार्बन युग के साथ निरंतरता बनाए रखने के साथ-साथ कम-कार्बन ऊर्जा प्रणालियों की ओर विविधीकरण के लिए वित्तीय आधार भी प्रदान करता है। हालाँकि, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया से बढ़ती प्रतिस्पर्धा, बदलती जलवायु नीतियाँ और 2030 के दशक के बाद मांग के स्थिर होने की संभावना यह संकेत देती है कि एलएनजी को अंतिम लक्ष्य नहीं, बल्कि एक स्थिर पुल के रूप में समझना चाहिए, जो बहु-ऊर्जा पोर्टफोलियो की ओर संक्रमण को संभव बनाता है।

कतर के नॉर्थ फील्ड विस्तार से 2030 तक एलएनजी उत्पादन क्षमता 77 मिलियन टन प्रतिवर्ष से बढ़कर लगभग 142 मिलियन टन होने की उम्मीद है, जिससे वह दुनिया के प्रमुख गैस निर्यातकों में अपनी स्थिति और मजबूत करेगा।

इसी प्रकार संयुक्त अरब अमीरात में एडीएनओसी का रुवैस एलएनजी परियोजना लगभग 9।6 मिलियन टन प्रतिवर्ष की अतिरिक्त क्षमता जोड़ेगी, जिसकी 80 प्रतिशत से अधिक क्षमता पहले ही दीर्घकालिक समझौतों के माध्यम से सुरक्षित की जा चुकी है। यह संयंत्र स्वच्छ बिजली और उन्नत डिजिटल तकनीक से संचालित होगा, जिससे यह क्षेत्र की सबसे कम-कार्बन एलएनजी सुविधाओं में से एक बनेगा।

हाइड्रोजन: अगला रणनीतिक निर्यात क्षेत्र

हाइड्रोजन को वैश्विक ऊर्जा प्रणाली के डीकार्बोनाइजेशन में खाड़ी क्षेत्र के प्रभाव को बनाए रखने के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा जा रहा है। जैसे-जैसे दुनिया स्वच्छ और कम-कार्बन ऊर्जा की ओर बढ़ रही है, खाड़ी देश अपनी ऊर्जा भूमिका को नए रूप में ढालने की कोशिश कर रहे हैं। हाइड्रोजन इस परिवर्तन का एक केंद्रीय तत्व बनकर उभर रहा है, क्योंकि इसे भविष्य की स्वच्छ ऊर्जा के प्रमुख विकल्पों में गिना जाता है।

पूरे खाड़ी क्षेत्र में सरकारें और राज्य समर्थित कंपनियाँ बड़े पैमाने पर हाइड्रोजन परियोजनाओं को विकसित कर रही हैं। इन परियोजनाओं में नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों, जैसे सौर और पवन ऊर्जा, का उपयोग करके हाइड्रोजन उत्पादन पर जोर दिया जा रहा है। साथ ही, क्षेत्र की मजबूत औद्योगिक अवसंरचना, बंदरगाह

सुविधाएँ और ऊर्जा निर्यात का अनुभव इन योजनाओं को और अधिक व्यावहारिक बनाते हैं।

इन पहलों का उद्देश्य न केवल स्वच्छ ऊर्जा उत्पादन बढ़ाना है, बल्कि हाइड्रोजन और उससे जुड़े उत्पादों को वैश्विक बाजारों तक निर्यात करना भी है, जिससे खाड़ी की ऊर्जा अर्थव्यवस्था भविष्य में भी प्रभावशाली बनी रह सके। सऊदी अरब की निओम ग्रीन हाइड्रोजन परियोजना के चालू होने पर प्रतिदिन लगभग 600 टन हरित हाइड्रोजन उत्पादन की उम्मीद है, जिसे 4 गीगावाट से अधिक सौर और पवन ऊर्जा से समर्थन मिलेगा।

संयुक्त अरब अमीरात में मसदर और एडीएनओसी हरित और नीले हाइड्रोजन परियोजनाओं को आगे बढ़ा रहे हैं, जबकि ओमान का हाइड्रोम ढाँचा और सूर हाइड्रोजन क्लस्टर देश को यूरोप और एशिया के लिए हरित ईंधन का प्रमुख निर्यातक बनाने का लक्ष्य रखते हैं। फिर भी, एलएनजी की तुलना में हाइड्रोजन निर्यात अभी अधिक अनिश्चित है, क्योंकि इसके लिए इलेक्ट्रोलाइज़र की लागत में कमी, विश्वसनीय जल आपूर्ति, और दीर्घकालिक खरीद समझौतों की आवश्यकता है।

अमोनिया: हाइड्रोजन निर्यात का व्यावहारिक मार्ग

अमोनिया को कम-कार्बन हाइड्रोजन के निर्यात का सबसे व्यावहारिक माध्यम माना जाता है। इसके परिवहन, भंडारण और उपयोग के लिए वैश्विक स्तर पर अवसंरचना पहले से विकसित है, इसलिए यह हाइड्रोजन ऊर्जा को अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों तक पहुँचाने का एक प्रभावी और व्यवहारिक विकल्प बन रहा है। सऊदी अरब की निओम परियोजना लगभग 1।2 मिलियन टन प्रति वर्ष हरित अमोनिया उत्पादन के लिए बनाई जा रही है।

इसने जापान को 40 टन ब्लू अमोनिया भेजकर दुनिया के शुरुआती अंतरराष्ट्रीय कम-कार्बन अमोनिया व्यापारों में से एक को भी पूरा किया। इसी तरह यूएई से जुड़ी कंपनी फर्टिग्लोब ने जर्मनी की हाइड्रोजन आयात निविदाओं के माध्यम से यूरोप में आपूर्ति समझौते हासिल किए हैं।

क्षेत्रीय बिजली ग्रिड: स्वच्छ बिजली का निर्यात

स्वच्छ बिजली का व्यापार अभी प्रारंभिक चरण में है, लेकिन भविष्य में यह ऊर्जा निर्यात मॉडल का महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकता है। जीसीसी इंटरकनेक्शन ग्रिड पहले से ही खाड़ी देशों की बिजली प्रणालियों को जोड़ता है, जिससे बिजली साझा करना और स्थिरता बढ़ाना संभव होता है। भविष्य में एचवीडीसी (उच्च वोल्टेज डायरेक्ट करंट) लाइनों के माध्यम से खाड़ी से दक्षिण एशिया, उत्तरी अफ्रीका और यूरोप तक नवीकरणीय बिजली पहुँचाने की योजनाएँ भी चर्चा में हैं।

कार्बन प्रबंधन: कम-कार्बन रणनीति

कार्बन कैप्चर, उपयोग और भंडारण (CCUS) खाड़ी देशों के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति के रूप में उभर रहा है। कतर के रास लफ्फान संयंत्र, यूएई की अल रेयादाह परियोजना, और सऊदी अरब के जुबैल सीसीएस हब जैसी परियोजनाएँ दिखाती हैं कि कार्बन प्रबंधन को ऊर्जा निर्यात ढांचे में शामिल किया जा रहा है।

यह तकनीक हाइड्रोकार्बन उद्योग को पूरी तरह समाप्त किए बिना उसके पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में सहायक हो सकती है। इसके माध्यम से ऊर्जा उत्पादन जारी रखते हुए कार्बन उत्सर्जन को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे उद्योग अधिक टिकाऊ और जलवायु लक्ष्यों के अनुरूप बन सकता है।

उभरती बहु-ऊर्जा व्यवस्था

खाड़ी क्षेत्र आज वैश्विक ऊर्जा व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। यहां के देश हाइड्रोकार्बन को पूरी तरह समाप्त करने के बजाय उनके साथ नई ऊर्जा प्रणालियों को जोड़ने की रणनीति अपना रहे हैं। तेल और गैस से होने वाली आय, संप्रभु निवेश कोष और पहले से मौजूद मजबूत औद्योगिक अवसंरचना का उपयोग कम-कार्बन ऊर्जा प्रणालियों में निवेश और विस्तार के लिए किया जा रहा है। इसका उद्देश्य ऊर्जा निर्यात के पारंपरिक मॉडल को धीरे-धीरे आधुनिक और टिकाऊ मॉडल में बदलना है।

यह परिवर्तन अचानक या क्रांतिकारी तरीके से नहीं हो रहा, बल्कि योजनाबद्ध और क्रमिक रूप से आगे बढ़ रहा है। खाड़ी देश ऊर्जा संक्रमण को अवसर के रूप में देख रहे हैं, जिसमें वे हाइड्रोजन, स्वच्छ बिजली, कार्बन कैप्चर और अन्य कम-कार्बन तकनीकों के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाने की कोशिश कर रहे हैं। यदि यह रणनीति सफल होती है, तो खाड़ी क्षेत्र केवल कच्चे तेल के बैरल निर्यात करने वाला क्षेत्र नहीं रहेगा। इसके बजाय वह ऊर्जा के अणुओं, स्वच्छ बिजली और कार्बन प्रबंधन समाधानों का वैश्विक केंद्र बन सकता है। इससे वैश्विक ऊर्जा व्यापार की संरचना और दिशा दोनों में महत्वपूर्ण बदलाव संभव है।

इस संदर्भ में असली प्रश्न यह नहीं है कि खाड़ी क्षेत्र भविष्य की ऊर्जा प्रणाली में महत्वपूर्ण रहेगा या नहीं, बल्कि यह है कि कार्बन-मुक्त होती दुनिया में उसकी केंद्रीय भूमिका किस नए रूप में उभरेगी। ●

पारुल बख्शी ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन (ओआरएफ) मिडिल ईस्ट में एनर्जी एंड क्लाइमेट फेलो हैं।

डेटा, धातु और दबदबा

संदीप कुमार

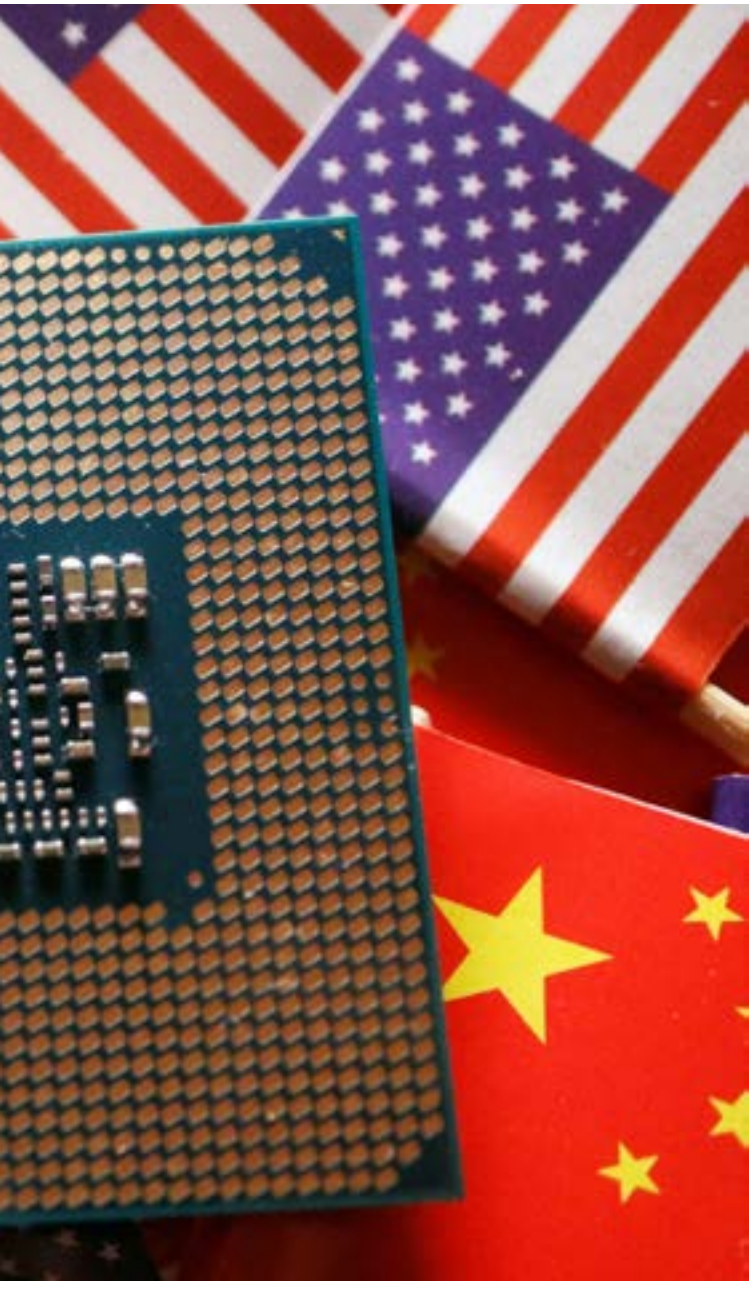

इस सदी में शक्ति का नया समीकरण डेटा, खनिज और सप्लाई चेन पर टिका है। यह विश्लेषण दिखाता है कि कैसे चीन, पश्चिम और भारत के बीच संसाधनों की होड़, वैश्विक व्यवस्था और आर्थिक प्रभुत्व को पुनर्परिभाषित कर रही है।

इतिहास के पन्नों को पलटें तो पता चलता है कि दुनिया के 'ऑर्डर' हमेशा विचारधाराओं, धर्मों या फिर सीमाओं की लकीरों से तय हुए हैं। कभी साम्राज्य 'सोने' के लिए लड़े, तो कभी 'तेल' के कुओं के लिए। लेकिन 2026 में हम एक ऐसे युग में प्रवेश कर चुके हैं जहां विचारधाराएं गौण हो चुकी हैं और 'मेटाबॉलिज्म' (चयापचय) प्राथमिक बन गया है। जिस तरह एक जीव को जीवित रहने के लिए भोजन को ऊर्जा में बदलने की अनिवार्य आवश्यकता होती है, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रों को अपनी अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए लीथियम, कोबाल्ट, सेमीकंडक्टर और हरित हाइड्रोजन जैसे 'पोषक तत्वों' की भूख है। यह 'द न्यू मेटाबॉलिक वर्ल्ड ऑर्डर' है—जहां शक्ति अब मिसाइलों की संख्या से नहीं, बल्कि इस बात से मापी जाती है कि आप कितनी कुशलता से संसाधनों को 'आर्थिक ऊर्जा' में बदल सकते हैं। यह युद्ध केवल भू-भाग का नहीं, बल्कि सप्लाई चेन के नियंत्रण का है।

> 21वीं सदी की शक्ति अब मिसाइलों में नहीं, बल्कि डेटा और धातुओं के नियंत्रण में छिपी है। नई विश्व व्यवस्था में वही राष्ट्र दबदबा बनाएगा, जो संसाधनों और सप्लाई चेन को ऊर्जा में बदलने की कला में माहिर होगा।

जीवाश्म ईंधन से 'खनिज युद्ध' की ओर

पिछली सदी का मेटाबॉलिज्म हाइड्रोकार्बन्स पर टिका था। तेल और गैस ही वह ईंधन थे, जिसने मध्य-पूर्व को विश्व की शक्ति का केंद्र बना दिया था। लेकिन नया मेटाबॉलिक ऑर्डर अब 'इलेक्ट्रॉन्स' का है। आज की दुनिया का 'भोजन' वे दुर्लभ खनिज हैं, जो इलेक्ट्रिक वाहन (ईवी) की बैटरी, स्मार्टफोन के चिप्स और डेटा सेंटर को जीवित रखते हैं।

चीन ने पिछले दो दशकों में दुनिया के इन खनिजों की पाचन नली पर एक ऐसा 'स्टेरॉयड-आधारित' नियंत्रण हासिल कर लिया

है, जो पश्चिमी देशों के लिए अपच का कारण बन गया है। चिली, इंडोनेशिया और कांगो जैसे देश अब केवल 'कच्चा माल' निर्यात करने वाले 'गुलाम' नहीं बने रहना चाहते। वे अब अपने मेटाबॉलिज्म को मजबूत करने के लिए देश के भीतर ही प्रोसेसिंग इकाइयों को अनिवार्य कर रहे हैं। यह 'संसाधन राष्ट्रवाद' है। जब कोई देश अपने खनिजों पर कुंडली मारकर बैठ जाता है, तो पूरी वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में एक 'कैलोरी का अकाल' पैदा हो जाता है। यह खनिज युद्ध अब परमाणु युद्ध से कहीं अधिक वास्तविक है, क्योंकि बिना इन खनिजों के, 2026 की आधुनिक अर्थव्यवस्था एक मरे हुए जीव की तरह स्थिर हो जाएगी।

चीन का एकाधिकार और पश्चिमी 'अपच' का संकट

चीन ने दुनिया की फैक्ट्री बनकर खुद को एक ऐसे विशाल जीव के रूप में विकसित किया है, जो पूरी दुनिया का कच्चा माल 'डकारता' है और तैयार माल 'उगल' देता है। रिफाइनिंग के क्षेत्र में चीन का एकाधिकार ऐसा है कि दुनिया का 80% से अधिक लीथियम और कोबाल्ट वहीं परिष्कृत होता है।

पश्चिमी देश (अमेरिका और यूरोप) इस बात से बुरी तरह 'अपच' का शिकार हैं कि उनकी 'ग्रीन एनर्जी' का हर नट-बोल्ट बीजिंग की अनुमति से आता है। इस पर निर्भरता को कम करने के लिए 'मेटाबॉलिक डिकपलिंग' या 'डी-रिस्किंग' की जो कोशिशें हो रही हैं, वे अभी भी शुरुआती दौर में हैं। विश्लेषको का स्पष्ट मत है—वर्तमान में चीन के बिना किसी भी आधुनिक अर्थव्यवस्था का मेटाबॉलिज्म संभव नहीं है। यह एक ऐसा 'बायोलॉजिकल ट्रैप' है, जहां पश्चिम खुद को स्वतंत्र करने की कोशिश तो कर रहा है, लेकिन उसकी पूरी कार्यप्रणाली चीनी रिफाइनिंग की रगों में बह रही है। यदि बीजिंग आज अपनी आपूर्ति बंद कर दे, तो वाशिंगटन से बर्लिन तक की पूरी औद्योगिक धड़कन कुछ ही घंटों में रुक जाएगी।

वैश्विक मेटाबॉलिज्म का नया 'हृदय'

इस नई विश्व व्यवस्था में भारत की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण और चुनौतीपूर्ण है। भारत अब केवल एक उपभोक्ता नहीं, बल्कि दुनिया का नया 'मैन्युफैक्चरिंग हार्ट' बनने की दौड़ में है। हमारे पास वह 'युवा श्रम बल' है, जो इस मेटाबॉलिज्म को नई गति प्रदान कर सकता है।

भारत की रणनीति अब खाड़ी के तेल पर अपनी निर्भरता कम करने की है। ग्रीन हाइड्रोजन का उत्पादन और सौर ऊर्जा का विस्तार, भारत के अपने 'मेटाबॉलिज्म' को स्वावलंबी बनाने का प्रयास है। यदि भारत ग्रीन हाइड्रोजन का वैश्विक हब बनता है, तो वह इस नए वर्ल्ड ऑर्डर का 'नेट एक्सपोर्टर' बन जाएगा। लेकिन

चुनौती यह है कि भारत को अपने इस मेटाबॉलिज्म को चलाने के लिए भी भारी मात्रा में खनिजों की आवश्यकता है। उसे ऑस्ट्रेलिया से लेकर अफ्रीका तक नई रणनीतिक साझेदारियां करनी होंगी, ताकि वह चीन के एकाधिकार को तोड़ सके। भारत का यह प्रयास एक 'मेगा-मेटाबॉलिक शिफ्ट' है, जो वैश्विक संतुलन को नई दिल्ली की ओर झुका सकता है।

एआई और डेटा का उपभोग

आधुनिक राष्ट्र का मेटाबॉलिज्म अब केवल भौतिक वस्तुओं या खनिजों तक सीमित नहीं है। 'डेटा' अब नया कच्चा माल है। जिस देश के पास डेटा को प्रोसेस करने की जितनी अधिक क्षमता (कंप्यूटिंग पावर) होगी, उसका मेटाबॉलिज्म उतना ही तीव्र और घातक होगा।

कृत्रिम मेधा (एआई) अब वह 'एंजाइम' है जो कच्ची जानकारी को आर्थिक मूल्य में बदल देता है। अमेरिका और चीन के बीच की होड़ दरअसल इस बात की है कि किसके पास सबसे शक्तिशाली 'प्रोसेसिंग यूनिट्स' (जीपीयू) हैं। यह वैसा ही है जैसे किसी शरीर की कोशिकाओं के भीतर ऊर्जा के उत्पादन की होड़। जो राष्ट्र जितना तेज डेटा प्रोसेस करेगा, वह उतना ही अधिक 'आर्थिक एटीपी' (ऊर्जा) उत्पन्न करेगा। यहां अमेरिका के पास चिप्स की

डिजाइनिंग का 'ब्रेन' है, तो चीन के पास प्रोसेसिंग की 'मसल्स'। यह तकनीक का चयापचय है, जहां एल्गोरिदम ही आधुनिक दौर के 'जीन' बन गए हैं।

पर्यावरणीय सीमाएं और 'अपशिष्ट' का संकट

किसी भी मेटाबॉलिज्म का एक अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण उत्पाद 'कचरा' (वेस्ट) होता है। पुराने वर्ल्ड ऑर्डर ने कार्बन उत्सर्जन के रूप में जो कचरा फैलाया, वह अब पृथ्वी के अस्तित्व के लिए एक 'ऑर्गन फेल्योर' (अंग विफलता) बन चुका है।

नया मेटाबॉलिक ऑर्डर अब 'सर्कुलर इकोनॉमी' पर आधारित होना चाहिए। जो देश कचरे को रिसाइकिल करने की तकनीक विकसित करेगा, वही भविष्य का विजेता होगा। 'कार्बन बॉर्डर टैक्स' जैसे हथकंडे अब 'मेटाबॉलिक स्वच्छता' के नाम पर व्यापार युद्ध को जन्म दे रहे हैं। विकसित देश, जिन्होंने पहले कचरा फैलाया, अब विकासशील देशों पर टैक्स लगा रहे हैं। यह एक नया आर्थिक छलावा है, जो वैश्विक उत्तर और दक्षिण के बीच एक नई दीवार खड़ी कर रहा है।

भविष्य का अस्तित्व—एक नया जीवंत साम्राज्य

यह स्थितियां हमें सिखाती है कि शक्ति अब मिसाइलों की संख्या में नहीं, बल्कि 'लचीली आपूर्ति श्रृंखला' में निहित है। वही राष्ट्र महाशक्ति बनेगा जो अपने खनिजों के स्रोत सुरक्षित कर सके, ऊर्जा जरूरतों को स्वच्छ बना सके और सबसे महत्वपूर्ण, अपने डेटा को बुद्धिमानी से 'ज्ञान' में बदलकर तेजी से प्रोसेस कर सके।

पुराने साम्राज्य सीमाओं के लिए लड़े थे, नए साम्राज्य 'एल्गोरिदम' और 'एटम्स' के लिए लड़ेंगे। यह एक ऐसा युद्ध है जहां हारने वाले का मेटाबॉलिज्म धीमा पड़ जाएगा—उसकी फैक्ट्रियां ठप हो जाएंगी, उसके शहर अंधकार में डूब जाएंगे और वह इतिहास के पन्नों में एक 'विलुप्त प्रजाति' की तरह विलीन हो जाएगा। यह एक ऐसा साम्राज्य है जहां 'जीवित' रहने का अर्थ अब केवल 'विकास' करना नहीं, बल्कि अपने संसाधनों को सही दिशा में 'पचाने' की कला में माहिर होना है। 21वीं सदी का असली विजेता वह नहीं, जो सबसे बड़ा है, बल्कि वह है जो सबसे अधिक 'ऊर्जावान और कुशल' है।

इसी संदर्भ में भारत की 'क्रिटिकल मिनरल नीति' एक सुरक्षा कवच के रूप में उभरती है। राष्ट्र ने अब 30 खनिजों को अपनी रणनीतिक प्राथमिकताओं में शीर्ष पर रखा है। 'खनिज विदेश इंडिया लिमिटेड' (KABIL) के माध्यम से भारत अब वैश्विक स्तर पर उन खनिज भंडारों का अधिग्रहण कर रहा है जो हमारी आने वाली पीढ़ियों की तकनीकी जरूरतों को पूरा करेंगे। जम्मू-कश्मीर से लेकर राजस्थान तक घरेलू खोजों ने इस दिशा में एक नई उम्मीद जगाई है। भारत अब 'मिनरल सिक्योरिटी पार्टनरशिप' जैसे वैश्विक गठबंधनों का हिस्सा बनकर उस चीन-केंद्रित आपूर्ति श्रृंखला को चुनौती दे रहा है जिसने वर्षों से दुनिया को बंधक बना रखा था। यह केवल एक व्यापारिक बदलाव नहीं है, बल्कि भारत के लिए अपनी संप्रभुता को तकनीकी और आर्थिक रूप से परिभाषित करने का एक ऐतिहासिक अवसर है। ●

जॉर्जिया मेलोनी

दरकता तिलिस्म

रोम की सत्ता में कभी अजेय दिखने वाली जॉर्जिया मेलोनी का जादू अब दरकने लगा है। जनमत संग्रह में मिली हार ने न सिर्फ उनके सुधार एजेंडे, बल्कि उनकी राजनीतिक पकड़ और छवि—दोनों पर गंभीर सवाल खड़े कर दिए हैं।

जलज श्रीवास्तव

रोम की सात पहाड़ियों पर जब सूरज ढलता है, तो प्राचीन खंडहरों की परछाइयां लंबी होने लगती हैं। साल 2022 में जब जॉर्जिया मेलोनी सत्ता के गलियारों में दाखिल हुई थीं, तो उनके कदम किसी रोमन विजेता की तरह थे। उनके चारों ओर 'अजेयता' का एक ऐसा प्रभामंडल था, जिसने यूरोप के सबसे पुराने और चतुर राजनेताओं को भी अचंभित कर दिया था । वे 'ब्रदर्स ऑफ इटली' की मशाल थामे हुए एक ऐसी नायिका थीं, जिसे लगा था कि उन्होंने नियति को अपने वश में कर लिया है। लेकिन राजनीति का मंच किसी ओपेरा जैसा होता है—तालियों की गड़गड़ाहट और सन्नाटे के बीच की दूरी बहुत कम होती है ।

23 मार्च 2026 की वो रात, जब इटली के आसमान में बादलों का डेरा था। मेलोनी ने एक दांव खेला था—न्याय प्रणाली में बदलाव का एक 'मामूली' जनमत संग्रह। इसे उनके विधायी एजेंडे का 'फ्लैगशिप' या सबसे बड़ा जहाज कहा जा रहा था । उन्हें उम्मीद थी कि जनता इस जहाज को किनारे लगाएगी, लेकिन विपक्ष की नेता एली श्लेन ने इसे मेलोनी के खिलाफ 'विश्वास मत' के युद्धक्षेत्र में बदल दिया ।

जब नतीजे आए, तो वे किसी ठंडी बौछार की तरह थे। 54% बनाम 46%। इटली की जनता ने मेलोनी के 'न्यायिक सुधारों' को नहीं, बल्कि उनके अहंकार को खारिज कर दिया था । 59% का भारी मतदान इस बात का गवाह था कि जनता सोई नहीं थी, बल्कि जागकर अपनी नाराजगी की इबारत लिख रही थी ।

मेलोनी की सरकार 1945 के बाद से इटली की तीसरी सबसे लंबी चलने वाली सरकार रही है । लेकिन यह स्थिरता अब एक 'खामोश पिंजरा' महसूस होने लगी थी। वे कट्टरपंथ के किनारों को तराश कर खुद को 'सम्मानित मध्यमार्गी' दिखाने की कोशिश कर रही थीं, लेकिन इस प्रक्रिया में उन्होंने अपना वो मूल आकर्षण खो दिया जो उन्हें आम जनता से जोड़ता था ।

दरअसल, मेलोनी उस अभिनेत्री की तरह थीं जिसने अपनी स्क्रिप्ट तो बदल ली, लेकिन दर्शक अभी भी पुराने चेहरे की तलाश में थे। डोनाल्ड ट्रंप के साथ उनकी नजदीकी, जो कभी उनकी ताकत थी, अब ईरान युद्ध के साये में एक बोझ बन गई थी । अर्थव्यवस्था, जिसे यूरोपीय संघ के रिकवरी फंड की संजीवनी मिली थी, फिर भी सुस्त पड़ी थी और न्यायपालिका की सुस्ती किसी दलदल की तरह बढ़ती जा रही थी ।

जनादेश की ताजा ठोकर ने मेलोनी की 'अजेय' छवि को चकनाचूर कर दिया है। सुधारों की राजनीति अब भरोसे के संकट में बदल रही है—जहाँ गठबंधन की दरारें, सुस्त अर्थव्यवस्था और जनता की नाराजगी, सत्ता की नींव को कमजोर कर रही हैं।

जब जहाज डूबने लगता है, तो मल्लाह बलि का बकरा ढूंढते हैं। मेलोनी ने अपनी पर्यटन मंत्री डेनिएला सैंटांचे से इस्तीफा लिया, लेकिन भ्रष्टाचार के आरोपों और स्कैंडलों की गूंज को वो नहीं दबा पाईं । उनके गठबंधन में दरारें अब उन प्राचीन दरारों जैसी दिखने लगी थीं जो कोलोसियम की दीवारों पर वक्त ने उकेरी हैं ।

मेलोनी का वो जादुई प्रभामंडल अब धुंधला चुका है। उन्होंने उम्मीद की थी कि इस जीत के बाद वे संविधान बदलेंगी और प्रधानमंत्री की शक्तियों को असीमित कर देंगी । लेकिन अब, 2027 के चुनावों की आहट उनके लिए किसी डरावने सपने जैसी है। इटली के मतदाता, जो अपने 1948 के संविधान को किसी पवित्र धर्मग्रंथ की तरह पूजते हैं, उन्होंने मेलोनी को याद दिला दिया कि लोकतंत्र में 'राज' किसी व्यक्ति का नहीं, बल्कि 'जन' का होता है ।

मेलोनी अपने भव्य कार्यालय की खिड़की से रोम की सड़कों को देखती हैं। रोशनी अभी भी है, लेकिन वो चमक गायब है। वो अजेय जॉर्जिया, जो कभी तूफानों की सवारी करती थी, आज खुद एक लहर के थपेड़े से सहमी खड़ी है।

इटली की गलियों में अब एक नई गूंज है— **'चमक अब फीकी पड़ रही है।'** •

ड्रैगन की मुस्तैदी और ताइवान का मौन

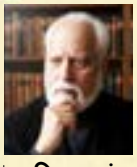

सच्चिदानंद

एक दूसरे जलडमरूमध्य की दास्तां

हिंद-प्रशांत के कुरुक्षेत्र में ताइवान वह 'सिलिकॉन किला' है, जिसे भेदने के लिए चीनी ड्रैगन अपनी चालें चल रहा है। ईरान युद्ध के साये में फंसी वैश्विक व्यवस्था और भारत के सामरिक हितों के बीच बुनी यह एक महागाथा है।

ताइवान जलडमरूमध्य की लहरें मार्च की ठंडी हवाओं में किसी शांत ज्वालामुखी की तरह सोई हुई दिखती हैं। लेकिन इस शांति के नीचे भू-राजनीति का लावा खौल रहा है। ताइपे के 'प्रेसिडेंशियल ऑफिस' की खिड़कियों से बाहर देखते हुए रणनीतिकार दुनिया के दूसरे छोर पर हो रही उथल-पुथल को महसूस कर सकते हैं। अमेरिकी खुफिया एजेंसियों की 18 मार्च की ताज़ा रिपोर्ट ने एक क्षणिक राहत तो दी— 'चीनी नेता फिलहाल 2027 तक ताइवान पर आक्रमण की योजना नहीं बना रहे हैं' । लेकिन क्या यह वाकई राहत है? भारतीय सामरिक

गलियारों में इसे 'दुश्मन की सुस्ती' नहीं, बल्कि 'शिकारी की मुस्तैदी' माना जा रहा है। 2027 केवल एक तारीख नहीं, बल्कि चीनी सेना (पीएलए) के आधुनिकीकरण के शताब्दी लक्ष्य का प्रतीक है, जिसे 'डेविडसन विंडो' के नाम से जाना जाता है ।

तेहरान की आग और ताइपे का डर

कहानी का असली रोमांच तब शुरू होता है जब हम खाड़ी के देशों में गिरते बमों और ताइवान के शांत तटों के बीच की अदृश्य डोर को देखते हैं। ईरान के साथ छिड़ा युद्ध केवल तेल की कीमतों का खेल नहीं है, बल्कि यह बीजिंग के लिए एक 'स्वर्ण अवसर' की तरह उभर रहा है। अमेरिका ने अपने सैन्य संसाधनों, मिसाइल इंटरसेप्टर्स और अत्याधुनिक युद्धक विमानों का एक बड़ा हिस्सा हिंद-प्रशांत से हटाकर खाड़ी में झोंक दिया है ।

ताइपे के गलियारों में चर्चा है कि यदि ईरान युद्ध लंबा खिंचता है, तो अमेरिकी सेना की 'युद्धक तैयारी' पर गहरा संकट आएगा। भारतीय विशेषज्ञों का मानना है कि जैसे-जैसे अमेरिका का गोला-बारूद कम होगा, ताइवान की सुरक्षा कवच में छेद होने लगेंगे । क्या अमेरिका दो महाशक्तियों के खिलाफ दो अलग-अलग मोर्चों पर एक साथ लोहा ले पाएगा? यह सवाल आज नई दिल्ली से लेकर वाशिंगटन तक गूंज रहा है।

सिलिकॉन की डोर और डिजिटल इंडिया का सपना

भारतीय परिप्रेक्ष्य से इस कहानी का सबसे धारदार हिस्सा 'सेमीकंडक्टर' है। ताइवान दुनिया के 90% सबसे उन्नत चिप्स बनाता है । भारत का 'डिजिटल इंडिया', स्मार्ट सिटीज और ब्रह्मोस जैसी मिसाइलें इसी ताइवानी सिलिकॉन की मोहताज हैं।

यदि ड्रैगन ने ताइवान जलडमरूमध्य की नाकाबंदी कर दी, तो पूरी दुनिया की डिजिटल नब्ज थम जाएगी। ईरान युद्ध ने पहले ही दिखा दिया है कि व्यापारिक रास्तों को बंद करना कितना आसान है—होर्मुज जलडमरूमध्य की नाकाबंदी ने वैश्विक तेल आपूर्ति का 20% रोक दिया है । अगर चीन ने ताइवान के साथ यही किया, तो वैश्विक अर्थव्यवस्था किसी कबाड़खाने की तरह चरमरा जाएगी। भारत के लिए यह केवल एक सामरिक मुद्दा नहीं, बल्कि अस्तित्व का संकट है।

2028-2032 का चक्रव्यूह

राजनीति में तारीखें इतिहास लिखती हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि असली खतरा 2027 नहीं, बल्कि 2028 और 2032 के बीच का कालखंड है। 2028 में ताइवान और अमेरिका दोनों जगह राष्ट्रपति चुनाव होने हैं । यदि ताइवान में 'डेमोक्रेटिक प्रोग्रेसिव पार्टी' फिर से सत्ता में आती है—जिसे चीन 'अलगाववादी' मानता है—तो युद्ध के नगाड़े बजना तय है । दूसरी तरफ, शी जिनपिंग 2032 तक अपने चौथे कार्यकाल के अंत में होंगे, 79 साल की उम्र में वे ताइवान को चीन का हिस्सा बनाकर अपना नाम इतिहास में अमर करना चाहेंगे ।

मानसिक युद्ध और 'ग्रे ज़ोन' टैक्टिक्स

चीनी सेना अब केवल सीमा पर नहीं खड़ी है, वह ताइवान के 'मानसिक अंतरिक्ष' में घुस चुकी है। चीनी विमान लगभग रोज ताइवान की हवाई सीमा का उल्लंघन कर रहे हैं । यह सीधे युद्ध की घोषणा नहीं, बल्कि 'थकाने वाली रणनीति' है। वे ताइवान के एयर डिफेंस को इस कदर थका देना चाहते हैं कि जब असली हमला हो, तो प्रतिक्रिया देने की शक्ति ही न बचे।

भारतीय सामरिक विश्लेषकों के लिए यह स्थिति लद्दाख और हिमालय की याद दिलाती है, जहाँ चीन इसी तरह की 'सलामी स्लाइसिंग' की नीति अपनाता है। ताइवान जलडमरूमध्य आज वह प्रयोगशाला है जहाँ चीन अपनी भावी साम्राज्यवादी चालों का परीक्षण कर रहा है।

ताइवान की तैयारी और 'भारत' का रुख

ताइवान ने भी हाथ पर हाथ रखकर बैठना छोड़ दिया है। उसने अपने रक्षा बजट को जीडीपी के 3% से बढ़ाकर 5% करने और 2033 तक नई मिसाइल डिफेंस प्रणाली विकसित करने का संकल्प लिया है । ताइवान के रक्षा मंत्री वेलिंगटन कू की चेतावनी साफ है: 'अगर हम तैयार नहीं हुए, तो हमले की संभावना बढ़ जाएगी' ।

भारत इस समय एक कठिन संतुलन पर है। एक तरफ वह 'क्वाड' के जरिए अमेरिका के साथ है, तो दूसरी तरफ चीन के साथ सीधे सैन्य टकराव से बचना चाहता है। लेकिन ताइवान की आजादी हिंद महासागर की सुरक्षा से जुड़ी है। अगर ताइवान गिरा, तो दक्षिण चीन सागर चीन की निजी झील बन जाएगा, और भारत के व्यापारिक जहाजों का रास्ता बीजिंग की दया पर निर्भर होगा ।

एक नई विश्व व्यवस्था की आहट

ताइवान की कहानी आज महज़ एक द्वीप की आज़ादी की नहीं, बल्कि इस सदी के सबसे बड़े सत्ता संघर्ष की गाथा है। एक तरफ लोकतंत्र और वैश्विक व्यापार की सुरक्षा है, तो दूसरी तरफ एक महाशक्ति की बेलगाम महत्वाकांक्षा। ईरान की आग ने ताइवान के संकट को और अधिक जटिल बना दिया है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में, हमें यह समझना होगा कि ताइवान जलडमरूमध्य में उठने वाली एक भी लहर बंगाल की खाड़ी तक पहुँच सकती है। ड्रैगन की सांसें ताइपे के दरवाजे पर हैं, और उसकी नजरें पूरी दुनिया पर। वक्त की सुइयां टिक-टिक कर रही हैं। 2027 दूर नहीं है, और 2032 का भविष्य आज के निर्णयों पर टिका है। ●

दो पाटों में पाकिस्तान

ईरान-अमेरिका-इजरायल संघर्ष के बीच पाकिस्तान एक कठिन कूटनीतिक संतुलन में फंसा है—जहां सऊदी अरब की प्रतिबद्धताएं और ईरान की भौगोलिक वास्तविकताएं उसे हर कदम पर जोखिम और विवशता के बीच चुनने को मजबूर कर रही हैं।

मोहम्मद सिनान सियेच

ईरान पर अमेरिका-इजरायल युद्ध के अब तीसरे सप्ताह में प्रवेश करने के साथ ही, कई देशों की विदेश नीतियों की कड़ी परीक्षा हो रही है। इनमें सबसे बड़ी चुनौतियों का सामना करने वाले देशों में पाकिस्तान शामिल है। सऊदी अरब का एक करीबी सहयोगी और ईरान का पड़ोसी देश होने के नाते—जिसके साथ वह सैकड़ों किलोमीटर की सीमा साझा करता है—पाकिस्तान 'एक तरफ कुआँ और दूसरी तरफ खाई' वाली स्थिति में फंस गया है। सऊदी अरब के साथ उसके रणनीतिक पारस्परिक रक्षा समझौते को देखते हुए, जो किसी भी पक्ष के खिलाफ आक्रामकता की स्थिति में सैन्य प्रतिक्रिया को अनिवार्य बनाता है, पाकिस्तान की विदेश नीति के समीकरणों को बड़े पैमाने पर पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।

पाकिस्तान ने सऊदी अरब के साथ लंबे समय से संबंध बनाए रखे हैं और दशकों से उसे सैन्य सहायता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त, बड़ी संख्या में पाकिस्तानी नागरिक सऊदी अरब में काम करते हैं, जो महत्वपूर्ण 'रेमिटेंस' (विदेशी मुद्रा) भेजते हैं, जिससे पाकिस्तान की घरेलू अर्थव्यवस्था को सहारा मिलता है। सऊदी अरब के साथ पाकिस्तान का व्यापार लगभग 5 बिलियन अमेरिकी डॉलर का है, जो उसके विदेशी व्यापार का एक बड़ा हिस्सा है।

इसके अलावा, सऊदी अरब लंबे समय से पाकिस्तान को वित्तीय सहायता प्रदान करता रहा है, जो लगातार आर्थिक चुनौतियों से जूझता रहा है। हाल के वर्षों में, सऊदी अरब ने पाकिस्तान के खनिज क्षेत्र और बिजली सहित अन्य प्रमुख बुनियादी ढांचा परियोजनाओं में निवेश किया है, जिससे इस्लामाबाद के लिए इसका रणनीतिक महत्व और बढ़ गया है। SMDA कतर पर इजरायली मिसाइल हमले के तुरंत बाद अस्तित्व में आया, जो खाड़ी भागीदारों की सुरक्षा के प्रति अमेरिका की प्रतिबद्धता को लेकर सऊदी अरब की बढ़ती अनिश्चितता का संकेत था। इस व्यवस्था से पाकिस्तान को भी लाभ हुआ, क्योंकि इसके परिणामस्वरूप देश में सऊदी निवेश में वृद्धि हुई।

दूसरी ओर, पाकिस्तान और ईरान का इतिहास भी लंबा और जटिल

रहा है। दोनों के बीच द्विपक्षीय व्यापार लगभग 3 बिलियन अमेरिकी डॉलर है, जिसे दोनों पक्ष बढ़ाकर 10 बिलियन अमेरिकी डॉलर करने का लक्ष्य रखते हैं। युद्ध से पहले, संबंधों में धीरे-धीरे सुधार हो रहा था, जिसका प्रमाण पिछले दो वर्षों में दोनों देशों के अधिकारियों के बीच 25 उच्च-स्तरीय द्विपक्षीय दौरे हैं। साथ ही, समय-समय पर तनाव भी उभरा है, जैसे 2024 में दोनों देशों के बीच मिसाइल हमलों का संक्षिप्त आदान-प्रदान देखा गया। इसके बावजूद, दोनों देशों की भौगोलिक निकटता उनके संबंधों को महत्वपूर्ण बनाती है।

पाकिस्तान : पतन के मुहाने पर एक परमाणु शक्ति संपन्न देश

2026 की पहली तिमाही का सूरज जब पाकिस्तान की सरजमीं पर रोशनी बिखेर रहा होता है, तो वह किसी नई उम्मीद को नहीं, बल्कि एक और डूबते हुए दिन को रोशन करता है। पाकिस्तान आज एक ऐसे दोराहे पर खड़ा है जहां से आगे की राह नहीं, केवल खाई है। अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के गलियारों में अब इसे 'आर्थिक संकट' नहीं, बल्कि 'राज्य की पूर्ण विफलता' की संज्ञा दी जा रही है। एक ऐसा देश जिसके पास परमाणु बम तो हैं, लेकिन अपने नागरिकों को रोटी खिलाने के लिए आटा नहीं, और जिसके पास अपनी सरहद की सुरक्षा के दावे तो हैं, लेकिन अपनी ही गलियों में छिपे आतंकवाद का मुकाबला करने का साहस नहीं। पाकिस्तान की बुनियाद अब ईंट-पत्थरों पर नहीं, बल्कि कर्ज की उन परतों पर टिकी है जो किसी भी क्षण ढह सकती हैं। यह पतन केवल आकस्मिक नहीं है, यह दशकों की उन गलत नीतियों का परिणाम है, जहां 'रणनीतिक गहराई' के नाम पर आतंकवाद को पाला गया और अर्थव्यवस्था को सेना की सनक की बलि वेदी पर चढ़ा दिया गया।

कर्ज का मायाजाल जिसने संप्रभुता लील ली

पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था इस समय 'इंटेंसिव केयर यूनिट' में पड़ी एक ऐसी मरीज है, जिसका ऑक्सीजन सिलेंडर भी अब खाली हो चुका है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ उसका संबंध अब आर्थिक सहायता का नहीं, बल्कि 'कठोर गुलामी' का बन गया है। हम उस दौर में हैं जहां पाकिस्तान नया कर्ज केवल पुराने कर्ज का ब्याज चुकाने के लिए ले रहा है। यह एक ऐसा दुष्चक्र है जिसे 'पॉन्जी स्कीम' से बेहतर और क्या कहा जा सकता है?

महंगाई का तांडव अब किसी सांख्यिकीय आंकड़े में सिमटा नहीं है, यह हर घर के चूल्हे की राख बन चुका है। आटा, बिजली और पेट्रोल अब आम आदमी की पहुंच से बाहर होकर विलासिता की वस्तुएं बन चुके हैं। मध्यम वर्ग, जो किसी भी लोकतंत्र की रीढ़ होता है, वह अब तेजी से गरीबी रेखा की उस गहरी खाई में गिर रहा है जहां से वापसी का कोई रास्ता नहीं है। चीन और सऊदी अरब की 'रोलओवर' कर्ज की भीख ने पाकिस्तान की संप्रभुता को गिरवी रख दिया है। चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा, जो कभी 'गेम चेंजर' बताया जाता था, अब एक 'डेब्ट ट्रैप' के रूप में गूंज रहा है। पाकिस्तान की बंद हो चुकी फैक्ट्रियां और खंडर हो रहे औद्योगिक क्षेत्र इस बात के गवाह हैं कि बिना उत्पादन के, केवल कर्ज पर चलने वाला देश लंबे समय तक अपना अस्तित्व नहीं बचा सकता।

सेना बनाम जनता का खूनी द्वंद्व

पाकिस्तान के इतिहास में पहली बार 'एस्टेब्लिशमेंट'—यानी सेना—और आम जनता के बीच की खाई इतनी चौड़ी हो गई है कि उसे अब किसी भी चुनावी मुखौटे से नहीं ढका जा सकता। हाइब्रिड शासन का जो मॉडल सेना ने पिछले कुछ वर्षों में गढ़ा था, वह पूरी तरह से भस्म हो चुका है। राजनीतिक दलों के बीच बढ़ती शत्रुता और नफरत ने देश की नीतिगत निरंतरता को समाप्त कर दिया है। न्यायपालिका, कार्यपालिका और सैन्य नेतृत्व के बीच का टकराव अब एक 'ओपन वार' में तब्दील हो चुका है। जब देश के संस्थान आपस में ही एक-दूसरे को नीचा दिखाने में मशगूल हों, तो शासन व्यवस्था का पंगु होना स्वाभाविक है। जनता का अपने राजनीतिक नेतृत्व से भरोसा इस कदर उठ चुका है कि भविष्य में किसी

फाइल फोटो

पाकिस्तान की सीमाएं

वर्तमान परिदृश्य में, ईरान की ओर से सऊदी अरब पर कई हमले होने की स्थिति में, रियाद सैन्य सहायता के लिए पाकिस्तान की ओर रुख कर सकता है। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री शहबाज शरीफ ने पहले ही सऊदी अरब के लिए अपने देश की 'पूर्ण एकजुटता और समर्थन' व्यक्त कर दिया है। साथ ही, मुजतबा खामेनेई को ईरान का नया सर्वोच्च नेता घोषित किए जाने के बाद शरीफ ने ईरानी राष्ट्रपति मसूद पेजेशकियन को फोन भी किया। अतः मुख्य प्रश्न यह है: यदि पाकिस्तान को सऊदी अरब की रक्षा के लिए आगे आना पड़े, तो उसे किन पहलुओं पर विचार करना होगा?

इस्लामाबाद के लिए, संघर्ष में सीधे शामिल होने के निर्णय को कई बाधाएं जटिल बनाती हैं। पहला, यद्यपि पाकिस्तान एसएमडीए के तहत सऊदी अरब का समर्थन करने के लिए बाध्य हो सकता है, लेकिन वह पहले से ही अफगानिस्तान के साथ जारी सैन्य संघर्ष में लगा हुआ है—एक ऐसा मुद्दा जिस पर ईरान संघर्ष की खबरों के बीच तुलनात्मक रूप से कम ध्यान दिया गया है। अफगानिस्तान के साथ तनाव ने पाकिस्तान पर महत्वपूर्ण सैन्य और परिचालन लागत थोपी है, जिससे इस्लामाबाद को उस मोर्चे पर भारी सुरक्षा संसाधन केंद्रित करने पड़ रहे हैं। किसी दूसरे देश के खिलाफ दूसरे संघर्ष में उतरना पाकिस्तान की सैन्य क्षमताओं और संसाधनों पर गंभीर दबाव डालेगा।

दूसरा, पाकिस्तान अपनी भूगोल की अनदेखी नहीं कर सकता और ईरान के साथ एक निरंतर युद्ध का मोर्चा नहीं खोल सकता। ईरान ने अपनी सैन्य क्षमताओं का प्रदर्शन किया है, जिसने अमेरिकी, इजरायली और खाड़ी रक्षा प्रणालियों को चुनौती दी है। इसके अलावा, तेहरान ने अपने विरोधियों पर जोरदार प्रहार करने की तीव्र इच्छाशक्ति दिखाई है। पाकिस्तान के लिए, अफगानिस्तान और भारत के साथ एक साथ सुरक्षा चुनौतियों को देखते हुए, पड़ोसी ईरान के साथ लंबे समय तक तनाव का जोखिम विशेष रूप से अरुचिकर है।

तीसरा, पाकिस्तान को घरेलू राजनीतिक संवेदनशीलता पर भी गौर करना होगा, जिसमें उसकी आबादी का एक बड़ा हिस्सा ईरान के प्रति सहानुभूति रखता है। पाकिस्तान की शिया आबादी देश का लगभग 20 प्रतिशत (करीब 35 मिलियन लोग) है, जिसके ईरान के साथ पुराने धार्मिक और सामाजिक संबंध हैं। कई पाकिस्तानी शिया नियमित रूप से ईरान की यात्रा करते हैं, और कुछ ने पहले सीरिया में ईरान समर्थित बलों के साथ मिलकर लड़ाई भी लड़ी है। ईरान के खिलाफ संघर्ष में भाग लेकर इस वर्ग को नाराज करना पाकिस्तान के लिए अस्थिरता पैदा कर सकता है, जिसने ऐतिहासिक रूप से सुन्नी और शिया समुदायों के बीच महत्वपूर्ण सांप्रदायिक हिंसा का अनुभव किया है।

कठिन निर्णय

पाकिस्तान के लिए, भारत और कई खाड़ी देशों की तरह, इस युद्ध में कोई आसान उत्तर नहीं है। ऊपर बताई गई बाधाओं के बावजूद, पाकिस्तान सहायता और आर्थिक समर्थन के लिए सऊदी अरब पर बहुत अधिक निर्भर है, विशेष रूप से ऐसे समय में जब उसकी घरेलू आर्थिक स्थिति नाजुक बनी हुई है। इसके अलावा, पाकिस्तान

खाड़ी देशों से ईंधन आयात में व्यवधान बर्दाश्त नहीं कर सकता, जो उसकी ऊर्जा आवश्यकताओं के एक बड़े हिस्से की आपूर्ति करते हैं।

यह तथ्य कि पाकिस्तान ने हॉर्मुज जलडमरूमध्य के माध्यम से ईंधन शिपमेंट के सुरक्षित मार्ग को सुनिश्चित करने के लिए ईरान के साथ बातचीत की है, यह दर्शाता है कि सऊदी अरब को राजनीतिक समर्थन देने के बावजूद, वह अपनी ऊर्जा सुरक्षा की रक्षा के लिए ईरान के साथ व्यावहारिक रूप से जुड़ा हुआ है। पाकिस्तान के पक्ष में काम करने वाला एक अन्य कारक चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा के तहत चीन का भारी निवेश है। ईरान के लिए, जो अपना अधिकांश तेल चीन को निर्यात करता है और कथित तौर पर संघर्ष के दौरान बीजिंग से खुफिया सहायता प्राप्त कर चुका है, पाकिस्तान में चीनी निवेशों को निशाना बनाना और एक प्रमुख भागीदार को नाराज करना आत्मघाती होगा। यह विशेष रूप से तब सच है जब तेहरान मध्य पूर्व के कई देशों पर अपने हमलों के बाद तेजी से तनावपूर्ण क्षेत्रीय संबंधों का सामना कर रहा है।

अंततः, पाकिस्तान ईरान और सऊदी अरब दोनों के प्रति एक सतर्क और संतुलित दृष्टिकोण अपनाता दिख रहा है। इस्लामाबाद द्वारा तनाव बढ़ाने से बचने की संभावना है, विशेष रूप से तब जब उसने ऊर्जा संसाधनों के संरक्षण के लिए घरेलू स्तर पर मितव्ययिता के उपाय लागू किए हैं। इसलिए, प्रत्यक्ष सैन्य संलिप्तता एक ऐसा परिणाम है जिससे पाकिस्तान बचना चाहेगा, और इसके बजाय वह तनाव कम करने के उद्देश्य से कूटनीतिक जुड़ाव का विकल्प चुनेगा। ●

लेखक ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में नॉन-रेसिडेंट एसोसिएट फेलो हैं।

बड़े नागरिक विद्रोह की आहट स्पष्ट सुनाई दे रही है। यह केवल सत्ता का संघर्ष नहीं है, यह उस व्यवस्था के प्रति नफरत है, जिसने जनता को केवल भ्रष्टाचार और खाली पेट के सिवाय कुछ नहीं दिया। सेना आज भी पर्दे के पीछे से डोर हिला रही है, लेकिन अब जनता ने भी धागे काट दिए हैं।

आतंकवाद का 'भस्मासुर'

पाकिस्तान की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि उसने जिन आतंकियों को अपने पड़ोसी देशों के खिलाफ 'रणनीतिक एसेट' के तौर पर पाला था, आज वही उनके गले की फांस बन चुके हैं। तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान (टीटीपी) का पुनरुत्थान इस बात का प्रमाण है कि पाकिस्तान का आंतरिक सुरक्षा ढांचा पूरी तरह चरमरा चुका है। खैबर पख्तूनख्वा और बलूचिस्तान के इलाकों में सुरक्षा बलों पर होने वाले हमले अब रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बन गए हैं।

सबसे दुखद और विद्रूप स्थिति यह है कि काबुल में 'मित्र सरकार' होने का दावा करने के बावजूद, पाकिस्तान की पश्चिमी सीमा अब एक असुरक्षित और खूनी सीमा बन चुकी है। काबुल में बैठे तालिबानी हुक्मरान अब इस्लामाबाद की बात सुनने को तैयार नहीं हैं। सीमा विवाद और सीमा पार से होने वाली गोलीबारी ने पाकिस्तान की उस 'रणनीतिक गहराई' की अवधारणा को ही दफन कर दिया है, जिसकी दुहाई देकर वे दशकों से सुरक्षा की मांग करते रहे थे। जिस 'आतंकवाद के सांप' को पाकिस्तान ने दशकों तक दूध पिलाया, आज वह सांप उसी के बेडरूम में घुसकर अपने ही आका के सीने पर फन फैलाए बैठा है।

बलूचिस्तान बना सुलगता हुआ बारूदखाना

बलूचिस्तान का मुद्दा पाकिस्तान के संघीय ढांचे के ताबूत में आखिरी कील साबित हो सकता है। बलूच लिबरेशन आर्मी (बीएलए) की बढ़ती ताकत और चीनी हितों पर होने वाले लगातार हमले यह दर्शाते हैं कि राज्य का नियंत्रण अब केवल कागजों तक सीमित रह गया है। बलूचिस्तान के लोग अब खुद को पाकिस्तान का हिस्सा मानने के बजाय एक 'कब्जे वाले क्षेत्र' की तरह देख रहे हैं। चीनी परियोजनाओं पर होने वाले हमले यह भी बताते हैं कि बीजिंग के लिए भी अब पाकिस्तान की जमीन सुरक्षित नहीं रही। यदि बलूचिस्तान में आग इसी तरह भड़कती रही, तो पाकिस्तान का संघीय ढांचा ताश के पत्तों की तरह बिखरने में देर नहीं लगाएगा।

अपने देश से ही मोहभंग

पाकिस्तान की वर्तमान जर्जर स्थिति का सबसे भयावह संकेत वहां के युवाओं का पलायन है। रिकॉर्ड संख्या में पढ़े-लिखे युवा—डॉक्टर, इंजीनियर और स्किल्ड वर्कर्स—देश छोड़कर भाग रहे हैं। एक देश जिसका भविष्य उसके युवाओं के हाथों में होना चाहिए था, आज वह देश अपने ही बच्चों को सुरक्षित भविष्य नहीं दे पा रहा है। यह युवाओं का 'मौन विद्रोह' है, जो देश के प्रति अपनी वफादारी छोड़कर किसी भी कीमत पर विदेश जाने को तत्पर हैं। जब किसी देश की पूरी एक पीढ़ी अपनी मातृभूमि से मोहभंग कर ले, तो समझ लेना चाहिए कि वह देश अंदर से खोखला हो चुका है।

अस्तित्व का अंतिम युद्ध

पाकिस्तान के लिए 'करो या मरो' की स्थिति है। देश के लिए अब समय खत्म हो चुका है। यदि वह अपनी सैन्य प्राथमिकताओं, भारत-विरोधी जुनून और धार्मिक कट्टरवाद को छोड़कर आर्थिक सुधारों और क्षेत्रीय शांति—विशेषकर भारत के साथ व्यापारिक संबंधों—की ओर नहीं बढ़ता, तो उसका एक 'विफल राष्ट्र' बनना तय है। परमाणु हथियारों से लैस एक देश का इस तरह अस्थिर होना पूरी दुनिया के लिए एक बड़ा खतरा है। ●

बंगाल का रण

लाभ Vs ललकार

अनवर हुसैन

पश्चिम बंगाल का 2026 चुनाव सिर्फ सत्ता परिवर्तन की लड़ाई नहीं, बल्कि दो विचारों का निर्णायक टकराव है—एक ओर तृणमूल का 'लाभार्थी लोकतंत्र', तो दूसरी ओर भाजपा का 'राष्ट्रवादी आह्वान'। यह मुकाबला तय करेगा कि मतदाता जेब को चुनेगा या पहचान को।

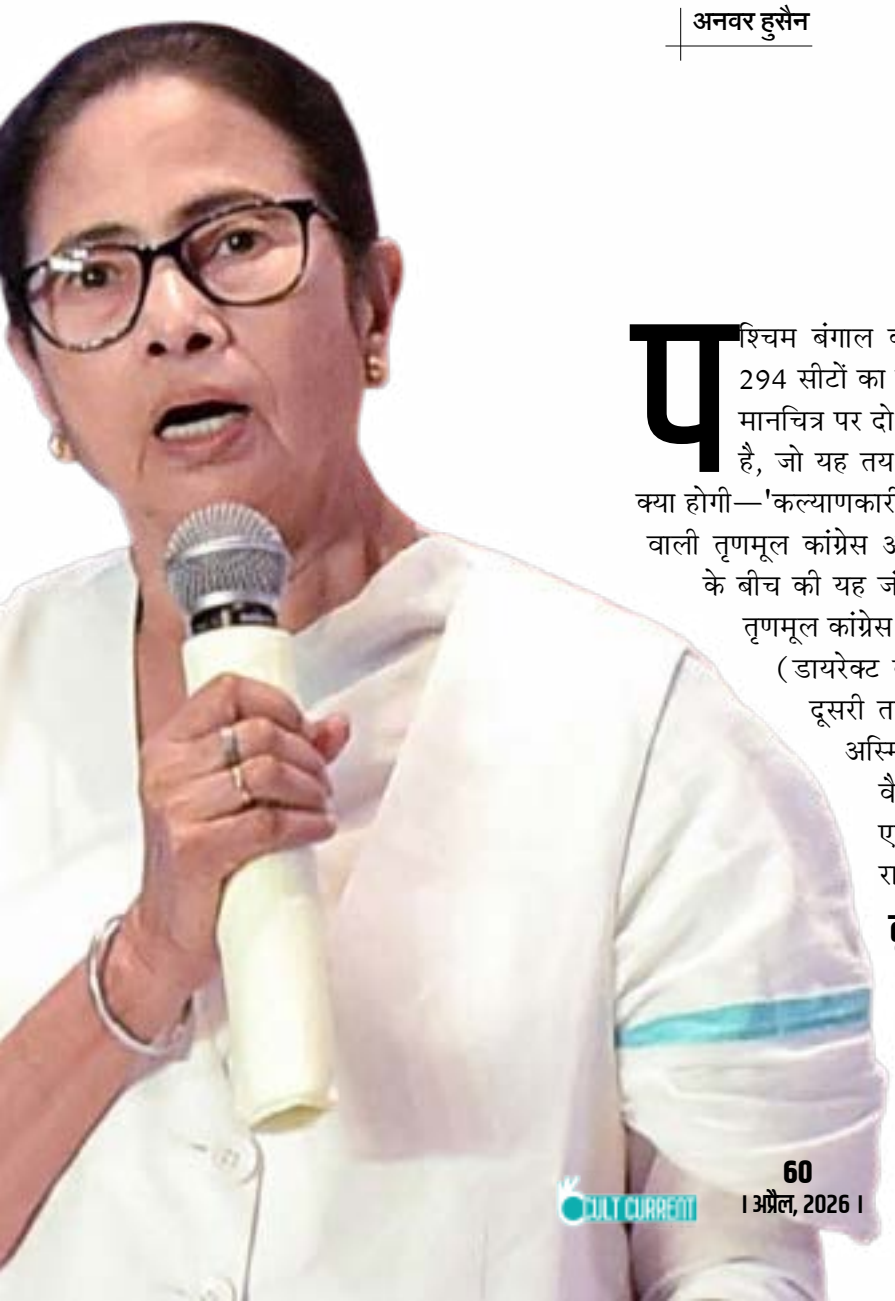

पश्चिम बंगाल की सरजमीं पर 2026 का विधानसभा चुनाव महज 294 सीटों का कोई साधारण गणित नहीं है। यह भारत के राजनीतिक मानचित्र पर दो ध्रुवों के बीच होने वाला एक ऐसा वैचारिक महासंग्राम है, जो यह तय करेगा कि आने वाले समय में लोकतंत्र की परिभाषा क्या होगी—'कल्याणकारी राज्य' या 'राष्ट्रवादी राज्य'। ममता बनर्जी के नेतृत्व वाली तृणमूल कांग्रेस और नरेंद्र मोदी-अमित शाह की कमान वाली भाजपा के बीच की यह जंग, दो भारत के दर्शनों की टक्कर है। एक तरफ वह तृणमूल कांग्रेस है, जिसने अपनी जड़ों को प्रत्यक्ष लाभ वाली राजनीति (डायरेक्ट बेनिफिट पॉलिटिक्स) के खाद-पानी से सींचा है, तो दूसरी तरफ भाजपा है, जिसने इस चुनाव को राष्ट्रीय सुरक्षा, अस्मिता और शासन की पवित्रता के प्रश्न से जोड़कर एक वैचारिक धर्मयुद्ध में बदल दिया है। यह रणभूमि है, जहां एक ओर लक्खी भंडार की खनक है, तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद की गर्जना।

तृणमूल का 'लाभार्थी लोकतंत्र'

तृणमूल कांग्रेस की राजनीति का केंद्र आज न कोई बड़ा नीतिगत बदलाव है, न कोई बड़ी औद्योगिक क्रांति, बल्कि उसका केंद्र है—'डायरेक्ट बेनिफिट'

(सीधा लाभ)। ममता बनर्जी ने एक ऐसे मॉडल को जन्म दिया है जिसे 'पॉलिटिकल क्लाइंटलिज्म 2.0' कहा जा सकता है। उन्होंने राज्य और मतदाता के बीच एक ऐसा सीधा रिश्ता बना दिया है, जहां सरकार अब केवल प्रशासक नहीं, बल्कि 'घर की बड़ी दीदी' की भूमिका में है।

'लक्खी भंडार' योजना ने ग्रामीण बंगाल की महिलाओं में तृणमूल की पकड़ को अभेद्य बना दिया है। जब किसी महिला को सीधे उसके खाते में नकदी मिलती है, तो वह केवल पैसे नहीं होते, वह उस 'भरोसे' की मुहर होती है जो राजनीति में सबसे बड़ी ताकत है। 'स्वास्थ्य साथी' और 'छात्र क्रेडिट कार्ड' ने उसी विश्वास को विस्तार दिया है। तृणमूल का यह मॉडल 'नीति, भावना और लाभ' के त्रिकोण पर टिका है। ममता बनर्जी ने 'घर की बेटी' (घर-एर मेये) का जो नैरेटिव बुना है, वह बंगाली अस्मिता की उस नब्ज पर प्रहार करता है, जहां तर्क गौण और भावनाएं प्रधान हो जाती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तृणमूल का 50% से अधिक वोट बैंक इसी लाभार्थी लोकतंत्र की नींव पर खड़ा है। उन्होंने अपने संगठन को गांव-गांव तक इस तरह फैलाया है कि वे हर मतदाता की थाली और बैंक खाते तक पहुंच चुके हैं।

राष्ट्रवाद का वज्र

तृणमूल के 'वेलफेयर' मॉडल के बरक्स भाजपा ने एक ऐसा 'राष्ट्रवादी नैरेटिव' खड़ा किया है, जो भावनाओं

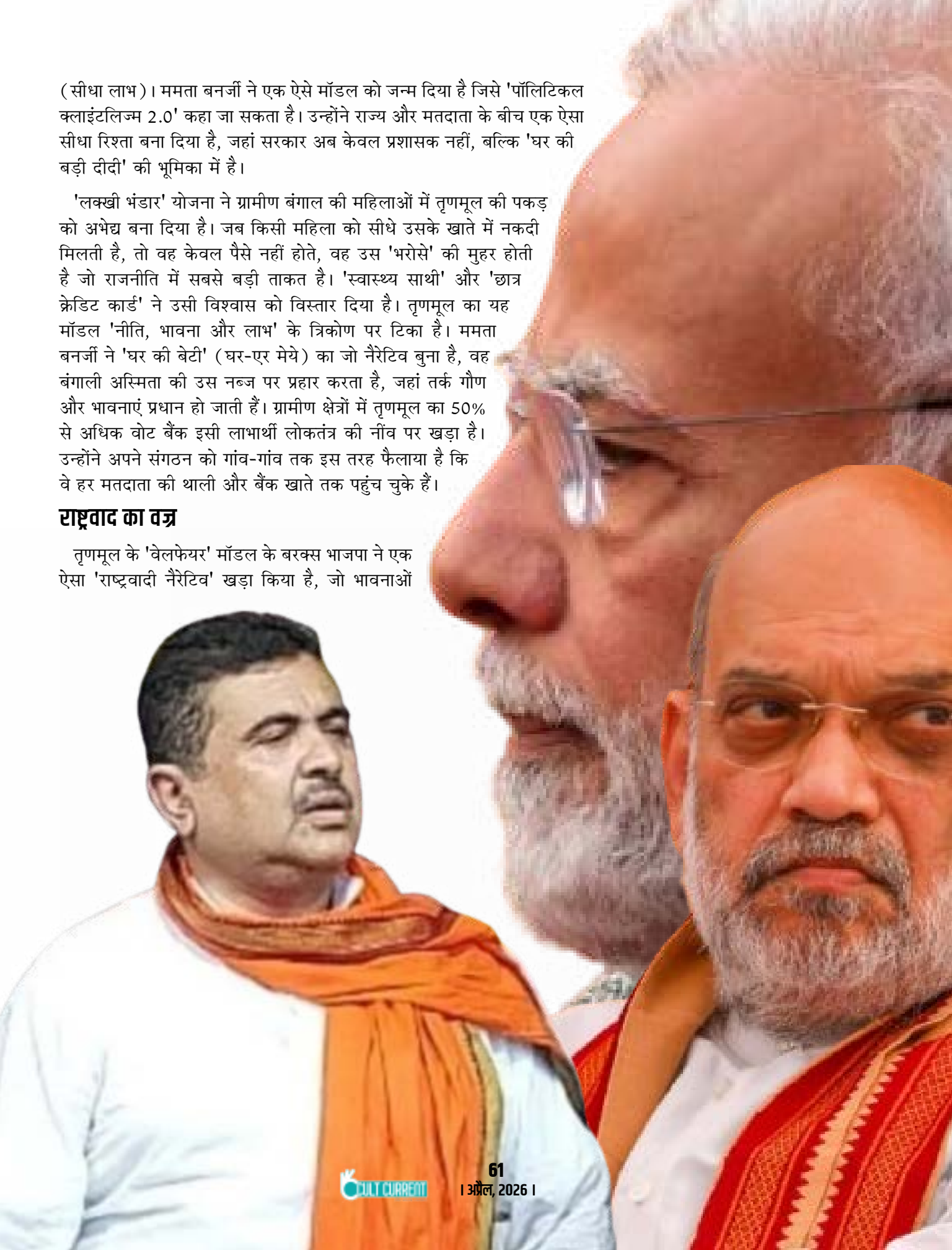

को सीधा छूता है। भाजपा के लिए यह चुनाव केवल सत्ता का हस्तांतरण नहीं है, बल्कि एक सांस्कृतिक और सुरक्षात्मक बदलाव है। भाजपा ने भ्रष्टाचार, घुसपैठ और सुरक्षा के ऐसे मुद्दे उठाए हैं जो शहरी और युवा वर्ग को अपनी ओर खींचते हैं।

भाजपा का मॉडल वैचारिक और राष्ट्रीय स्तर का है। वे तृणमूल को बंगाल की विफलता के प्रतीक के रूप में पेश करते हैं। 'चार्जशीट' जारी करके वे तृणमूल के 15 साल के शासन को 'भ्रष्टाचार और तुष्टीकरण' की एक लंबी कहानी के रूप में चित्रित करते हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा और सीमा सुरक्षा (सीएए/एनआरसी) जैसे मुद्दे भाजपा के वे तरकश के तीर हैं, जिनसे वे ध्रुवीकरण का वातावरण बनाने में कामयाब रहे हैं। 2016 में करीब 10% पर रहने वाली भाजपा ने 2021 में 38% वोट शेयर तक का जो सफर तय किया है, वह उसकी संगठनात्मक धार का प्रमाण है। यह वह धुरी है जो 'लाभार्थी लोकतंत्र' को 'वैचारिक राष्ट्रवाद' से चुनौती दे रही है।

चुनावी गणित का स्याह और सफेद पक्ष

डेटा की दुनिया में झांकें तो 2026 की तस्वीर धुंधली नहीं, बल्कि बेहद प्रतिस्पर्धी दिखती है। 2021 के विधानसभा चुनाव में तृणमूल के पास 215 सीटें थीं, जबकि भाजपा 77 पर सिमट गई थी। लेकिन वह 38.15% वोट शेयर भाजपा की उस शक्ति को दर्शाता है, जिसने वामपंथ और कांग्रेस को बंगाल की धरती से लगभग मिटा दिया है। आज के ओपिनियन पोल तृणमूल को 155-170 सीटों के करीब और भाजपा को 120-135 सीटों की ओर ले जाते दिख रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि तृणमूल की सीटें कम हो रही हैं और भाजपा एक मजबूत विपक्ष के रूप में और अधिक आक्रामक होकर उभरी है।

इस चुनाव के चार 'मास्टर-की' फैक्टर हैं- पहला, 'महिला वोट बैंक', जो तृणमूल की सबसे बड़ी ढाल है। दूसरा, 'धार्मिक ध्रुवीकरण', जो भाजपा का सबसे धारदार हथियार है। तीसरा, 'वोटर लिस्ट विवाद', जहां 12 लाख नए वोटरों का जुड़ना और लाखों के हटने के आरोपों ने खेल को संदिग्ध बना दिया है। चौथा, 'संगठन बनाम नेतृत्व', जहां तृणमूल का ग्रासरूट नेटवर्क मजबूत है, वहीं भाजपा के पास नरेंद्र मोदी और अमित शाह जैसा राष्ट्रीय करिश्मा है।

दो मॉडलों का वैचारिक संघर्ष

यह चुनाव पश्चिम बंगाल के लिए एक अस्तित्वगत प्रश्न है।

तृणमूल का तर्क है—'राज्य को नागरिक की देखभाल करनी चाहिए'। वहीं भाजपा का तर्क है—'राष्ट्र पहले, सुरक्षा पहले'। यह मॉडल की लड़ाई है। तृणमूल के पास सत्ता की वह मशीनरी है जो अंतिम पन्ने तक पहुंचती है, लेकिन उस पर भ्रष्टाचार और रोजगार की कमी के दाग भी गहरे हैं। दूसरी तरफ भाजपा के पास राष्ट्रीय नेतृत्व की स्पष्टता और वैचारिक धरातल है, लेकिन स्थानीय स्तर पर उसके संगठन को अभी भी तृणमूल के 'स्थानीय दबदबे' को भेदने के लिए और अधिक पसीने बहाने की जरूरत है।

क्या मतदाता चुनेंगे 'लाभ' या 'अस्मिता'?

अंततः यह चुनाव इस सवाल पर आकर टिक जाता है कि क्या बंगाल का आम मतदाता अपनी जेब में आए हुए 'सीधे लाभ' को तरजीह देगा या फिर वह 'वैचारिक राष्ट्रवाद' की उस अग्नि में कूदने के लिए तैयार है, जिसे भाजपा ने जलाया है? यदि गरीब और महिला वोट निर्णायक रहे, तो तृणमूल की वापसी तय है। लेकिन यदि धार्मिक ध्रुवीकरण का ज्वार उठा, तो भाजपा एक बड़ा उलटफेर कर सकती है। हंग असेंबली या बहुत ही मामूली अंतर की जीत-हार की संभावनाओं से इनकार नहीं किया जा सकता।

लोकतंत्र की प्रयोगशाला

2026 का पश्चिम बंगाल चुनाव भारत के लोकतंत्र की वह प्रयोगशाला है, जहां यह देखा जाएगा कि क्या 'वेलफेयर मॉडल' राष्ट्रवाद के तूफानों को झेलने में सक्षम है? तृणमूल के लिए यह अपनी सत्ता बचाने का आखिरी किला है, तो भाजपा के लिए यह 'ईस्टर्न फ्रंट' पर अपनी जीत का ध्वज फहराने का स्वर्णिम अवसर है। जो भी जीते, एक बात तो तय है—बंगाल की राजनीति अब पहले जैसी नहीं रहेगी। चाहे तृणमूल के 'दीदी' ब्रांड की जीत हो या भाजपा के 'राष्ट्रवाद' की, दोनों को यह स्वीकार करना होगा कि बंगाल अब एक 'इश्यू-ड्रिवन' ध्रुवीकरण का अभ्यस्त हो चुका है। भारतीय राजनीति का भविष्य इसी प्रयोगशाला की आग में पक रहा है, और आने वाले दिनों में बंगाल की गलियों से उठने वाला शोर ही पूरे भारत की राजनीति की दिशा तय करेगा। बंगाल का यह चुनाव केवल बंगाल का नहीं, बल्कि आने वाले भारत का एक 'ब्लूप्रिंट' है, जो यह बताएगा कि क्या मतदाता का पेट उसके स्वाभिमान से बड़ा है, या स्वाभिमान का प्रश्न पेट के हक से अधिक गहरा है। ●

सस्ता एआई बड़ा असर

भारत में एआई तेज़ी से बढ़ रहा है, पर इसकी आर्थिक नींव कमजोर है। ऊँची लागत, ऊर्जा और संसाधन सीमाएँ इसके विस्तार को बाधित करती हैं। ऐसे में मितव्ययी एआई ही भारत के लिए व्यावहारिक और टिकाऊ रास्ता बनकर उभरता है।

कुमकुम मोहता

कृत्रिम बुद्धिमत्ता तेज़ी से विस्तार कर रही है, किंतु इसकी आधारभूत अर्थव्यवस्था अब भी अनिश्चित बनी हुई है। वैश्विक एआई बाज़ार के 2027 तक 17 अरब अमेरिकी डॉलर से अधिक होने का अनुमान है, और इसमें निवेश हर वर्ष तीव्र गति से बढ़ रहा है। फिर भी, एआई मॉडल जितने बेहतर हो रहे हैं, उतना आर्थिक फायदा नहीं दिख रहा है। महंगी अवसंरचना, अधिक बिजली खपत और निजी कंप्यूट संसाधनों पर निर्भरता के कारण एआई की क्षमता और उसके वास्तविक उपयोग के बीच अंतर बढ़ रहा है।

हाल ही में आयोजित इंडिया एआई इम्पैक्ट समिट ने इन चिंताओं को रेखांकित किया और वास्तविक संसाधन सीमाओं के भीतर एआई प्रणालियों के निर्माण और तैनाती की आवश्यकता

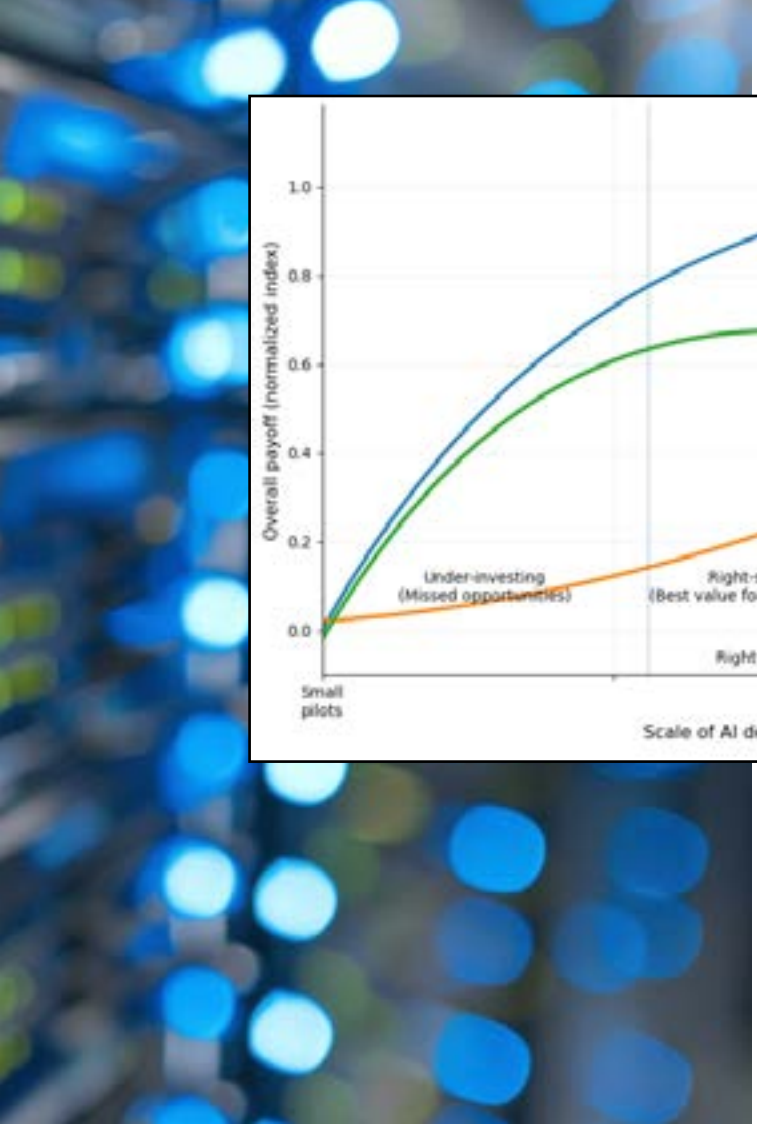

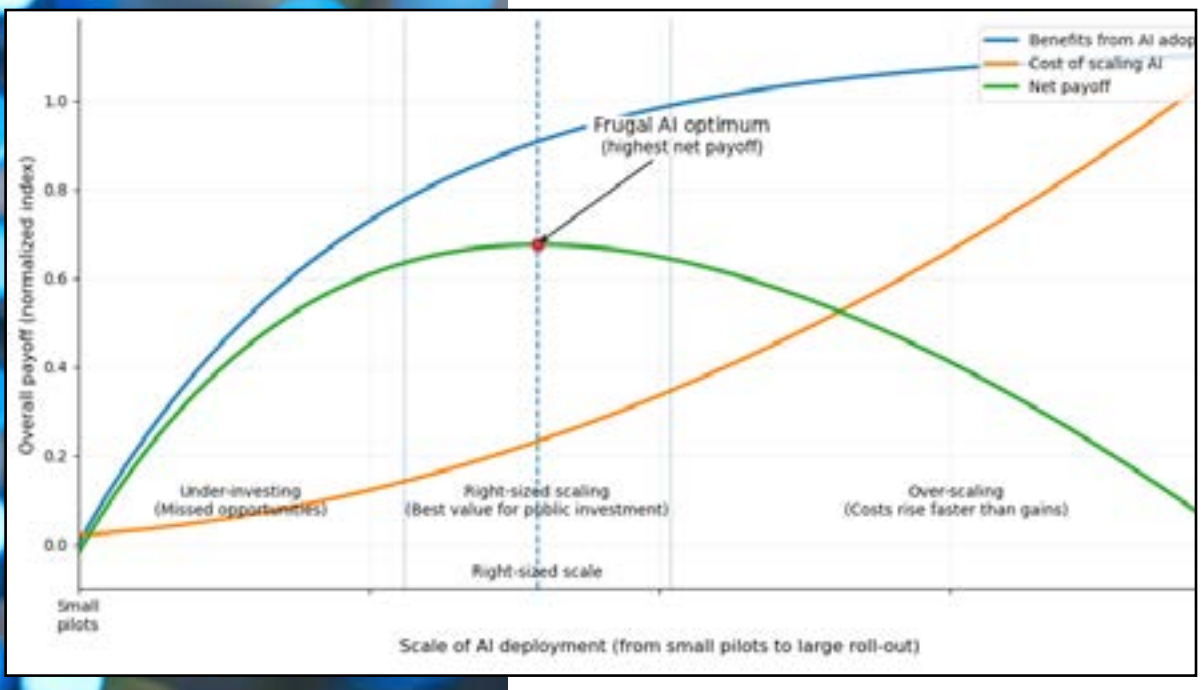

चित्र 1: एआई के विस्तार में संतुलन – मितव्ययी एआई का सर्वोत्तम मॉडल Source: Author's Illustration

पर बल दिया। यह दिशा आर्थिक सर्वेक्षण में उल्लिखित उस दृष्टिकोण से मेल खाती है, जो लागत-सचेत और संदर्भ-उपयुक्त नवाचार की आवश्यकता को रेखांकित करता है। इस संदर्भ में, मितव्ययी एआई एक व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करता है।

भारत में फ्रंटियर स्केल की सीमाएं

दुनिया की तरह भारत में भी एआई क्षमता और संसाधनों में असमानता है, और लगभग 45% कंपनियां अभी इसके शुरुआती उपयोग चरण में हैं। छोटी कंपनियां और सूक्ष्म उद्यम उच्च अवसंरचना लागत और सीमित डिजिटल साक्षरता से जूझ रहे हैं। उपभोक्ता स्तर पर स्मार्टफोन के माध्यम से डिजिटल पहुँच तो बढ़ी है, किंतु उपयोग क्षमता असमान बनी हुई है। शहरों में जहाँ लोग पढ़ाई और काम के लिए जनरेटिव एआई का अधिक उपयोग कर रहे हैं, वहीं ग्रामीण और छोटे शहरों में कौशल, डिजिटल सुविधाओं और स्थानीय भाषा की कमी के कारण इसका उपयोग अभी सीमित है।

आपूर्ति-पक्ष पर भारत को उच्च-प्रदर्शन कंप्यूटिंग क्षमताओं और विशेषीकृत हार्डवेयर तक पहुँच में सीमाओं का सामना करना पड़ता है। आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार, कंपनियों को कंप्यूटिंग और उससे जुड़ी बुनियादी सुविधाओं पर भारी खर्च करना पड़ सकता है, लेकिन इससे मिलने वाला लाभ अभी अनिश्चित है। एआई प्रणालियाँ अत्यधिक ऊर्जा-गहन होती हैं, और डेटा सेंटर क्षमता के विस्तार के लिए विश्वसनीय बिजली, शीतलन प्रणालियाँ और भूमि की आवश्यकता होती है। साथ ही, डीप-टेक और फ्रंटियर एआई के लिए जोखिम पूँजी तक पहुँच वैश्विक मानकों की तुलना में सीमित है, जिससे घरेलू कंपनियों की बड़े पैमाने पर प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता बाधित होती है।

वैश्विक फ्रंटियर पर, ओपनएआई जैसी कंपनियों ने चैटजीपीटी जैसी प्रणालियों के संचालन में अत्यधिक लागत वहन की है, इन निवेशों से कब और कितना फायदा होगा, यह अभी साफ नहीं है। दूसरी ओर, कुछ ऐसी कंपनियां भी हैं जो कम कंप्यूटिंग संसाधनों का इस्तेमाल करके कम लागत में लगभग वही प्रदर्शन हासिल कर रही हैं। उन्नत तकनीक प्रगति लाती है, पर भारत के लिए कम लागत, बहुभाषी और वास्तविक परिस्थितियों में काम करने वाली एआई प्रणालियाँ अधिक जरूरी हैं।

मितव्ययी एआई का क्रियान्वयन

भारत की एआई यात्रा को इस तरह समझा जा सकता है कि हमें सीमित संसाधनों-जैसे कंप्यूटिंग, पूँजी और बुनियादी ढांचे-के भीतर रहकर अधिक से अधिक उत्पादकता हासिल करनी है। मितव्ययी एआई इसी विचार पर आधारित है। इसका मतलब है कि किसी काम को करने के लिए जितने न्यूनतम संसाधनों की जरूरत हो, उतने ही संसाधनों का उपयोग किया जाए। साथ ही, 2016 से फ्रंटियर प्रशिक्षण लागत लगभग 2.4 गुना प्रतिवर्ष की दर से बढ़ी है। इससे संकेत मिलता है कि एक सीमा के बाद बहुत अधिक विस्तार करने पर लागत तेजी से बढ़ने लगती है और मिलने वाला अतिरिक्त लाभ कम हो जाता है, जिससे यह आर्थिक रूप से सही नहीं रहता।

इस संतुलन अवस्था में उत्पादकता लाभ लक्षित तैनाती से प्राप्त होते हैं। कृषि क्षेत्र में, एआई-सक्षम परामर्श और बाज़ार-संयोजन प्रणालियों ने फ्रंटियर-स्तरीय मॉडलों की आवश्यकता के बिना मूल्य खोज और लॉजिस्टिक्स दक्षता में सुधार किया है।

स्वास्थ्य क्षेत्र में, प्रारंभिक कैंसर जाँच हेतु कम लागत वाली एआई निदान प्रणालियाँ दर्शाती हैं कि संकीर्ण और संदर्भ-उपयुक्त प्रणालियाँ संसाधन सीमाओं के भीतर मापनीय परिणाम दे सकती हैं। ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि कम्प्यूटेशनल दक्षता किस प्रकार सेवा वितरण और आय स्थिरता में ठोस सुधार में परिवर्तित होती है।

दक्षता लाभ से आगे बढ़कर, मितव्ययी एआई नवाचार में व्यापक भागीदारी को सक्षम बनाता है। भारत की डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना, जो अंतःप्रचालनीय और खुले प्रोटोकॉल पर आधारित है, यह प्रदर्शित करती है कि मॉड्यूलर प्रणालियाँ बिना फ्रंटियर-स्तरीय पूंजी निवेश के समावेशी रूप से विस्तार कर सकती हैं। उभरते घरेलू खिलाड़ी जैसे सर्वम एआई

इस परिवर्तन को और स्पष्ट करते हैं। पैमाने पर प्रतिस्पर्धा करने के बजाय, सर्वम ने भारतीय भाषाओं और वास्तविक उपयोग मामलों के अनुरूप मॉडल विकसित किए हैं, जिन्होंने दस्तावेज़ विश्लेषण और भाषण प्रसंस्करण जैसे चुनिंदा मानकों पर वैश्विक प्रणालियों से बेहतर प्रदर्शन किया है। भाषिनी और एआई4भारत जैसे खुले-भाषा पारिस्थितिकी तंत्र डेवलपर्स के लिए प्रवेश बाधाएँ कम करते हैं, साथ ही बड़े पैमाने के मॉडलों से जुड़ी ऊर्जा और कम्प्यूट तीव्रता को भी घटाते हैं।

मितव्ययी एआई के लिए नीतिगत आधार का निर्माण

मितव्ययी नवाचार पहले से ही भारत की विकास-यात्रा का हिस्सा रहा है, जो संसाधन सीमाओं, बड़े और लागत-कुशल तकनीकी कार्यबल तथा जन-स्तर की डिजिटल प्रणालियाँ निर्मित करने की सिद्ध क्षमता से आकार ग्रहण करता है। अतः भारत का एआई लाभ मॉडल के आकार की प्रतिस्पर्धा में नहीं, बल्कि तैनाती के लोकतंत्रीकरण में निहित है। नीति को इस परिवर्तन को क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ाना चाहिए। इंडिया एआई इम्पैक्ट समिट 2026 ने इसी दिशा का संकेत दिया है, जिसमें एआई संसाधनों तक लोकतांत्रिक पहुँच और वास्तविक

अनुप्रयोगों के विस्तार पर बल दिया गया।

प्रथम, एक महत्वपूर्ण प्रारंभिक कदम उभरता हुआ 'कम्प्यूट कॉमन्स' है। साझा GPU (कंप्यूटिंग संसाधन) की सुविधा मिलने से नई कंपनियों और संस्थाओं के लिए एआई में काम करना आसान हो सकता है। अगर इसमें पारदर्शिता नहीं होगी, तो सस्ती या सब्सिडी वाली कंप्यूटिंग सुविधा केवल बड़ी और पैसे वाली निजी कंपनियों तक ही सीमित रह सकती है। दूसरा, भारत को अलग-अलग क्षेत्रों के लिए साझा डेटा सिस्टम को बढ़ाना चाहिए, जैसा कि शिखर सम्मेलन में प्रदर्शित बोध स्वास्थ्य मंच के मॉडल से संकेत मिलता है। ऐसी व्यवस्थाओं को कृषि, परिवहन और शिक्षा जैसे क्षेत्रों तक भी बढ़ाया जाना चाहिए।

तीसरा, फंडिंग को इस तरह दिया जाना चाहिए कि नई तकनीकों को सिर्फ परीक्षण तक सीमित न रखा जाए, बल्कि उन्हें बड़े स्तर पर लागू करने के लिए प्रोत्साहन मिले।। चतुर्थ, भारत के उद्यमी पारिस्थितिकी तंत्र को मितव्ययी एआई नवाचार का प्रमुख चालक बनाया जाना चाहिए। यहाँ कम लागत में बड़े स्तर पर काम करने वाले डिजिटल समाधान बनाने का अच्छा अनुभव भी है। इसलिए भारतीय कंपनियाँ एआई तकनीक को अलग-अलग परिस्थितियों और जरूरतों के अनुसार उपयोगी अनुप्रयोगों में बदलने की अच्छी क्षमता रखती हैं। अंत में, भारत को ऐसा व्यावहारिक तरीका अपनाने की जरूरत है जिससे एआई की सफलता को मापा जा सके।

वैश्विक दक्षिण के लिए एआई

इन नीतिगत आधारों पर आगे बढ़ते हुए, भारत मितव्ययी एआई को वैश्विक दक्षिण के लिए एक निर्यात रणनीति के रूप में स्थापित कर सकता है, इसका मतलब है कि भारत सिर्फ तकनीक की नकल करने के बजाय कम लागत में बड़े स्तर पर काम करने वाली एआई प्रणालियाँ बनाकर आगे बढ़ सकता है। भारत कम लागत और बड़े स्तर पर काम करने वाली एआई प्रणालियाँ बनाकर नेतृत्व कर सकता है। मितव्ययी एआई ऐसा मॉडल बन सकता है जिसे वैश्विक दक्षिण के देश अपनाकर सस्ते और प्रभावी एआई समाधान विकसित कर सकें। •

कुमकुम मोहता ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन के सेंटर फॉर न्यू इकोनॉमिक डिप्लोमेसी में रिसर्च असिस्टेंट हैं।

शीत युद्ध के बाद अपनी प्रासंगिकता खोता नाटो आज आंतरिक मतभेद, वित्तीय असंतुलन और रणनीतिक भ्रम से जूझता एक मृतप्राय गठबंधन बन चुका है। बदलते युद्ध स्वरूप के बीच इसका भविष्य अब पुनर्गठन या पतन के दोराहे पर खड़ा है।

संतु दास

NATO शक्ति या भ्रम?

शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से ही उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) अपनी पहचान के उस गहरे संकट में डूबा है, जहां से वापसी अब असंभव सी जान पड़ती है। 2026 के इस दौर में नाटो एक ऐसी मृतप्राय मशीनरी की तरह व्यवहार कर रहा है, जो बिना किसी प्राणवायु के, बिना किसी दृष्टि के, केवल अपनी पुरानी आदतों और जड़ता के सहारे चल रही है। यूक्रेन का युद्ध इस गठबंधन के लिए संजीवनी बूटी तो साबित हुआ, लेकिन उस संजीवनी ने भी केवल इसके मृत अंगों को कुछ समय के लिए फड़फड़ाने पर मजबूर किया है। भीतर से यह

गठबंधन आपसी अविश्वास, बजटीय खींचतान और रणनीतिक विरोधाभासों से इस कदर खोखला हो चुका है कि यह अपनी ही धुरी पर लड़खड़ा रहा है। यह एक ऐसा सैन्य दिग्गज है, जिसके पास टैंक तो हजारों हैं, लेकिन एक दुश्मन को पहचानने की दृष्टि शून्य है।

रणनीतिक भटकाव

नाटो की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि इसके सदस्य देशों की आंखों पर बंधी पट्टियां अलग-अलग रंगों की हैं। पूर्वी यूरोपीय देश, जैसे पोलैंड और बाल्टिक राष्ट्र, रूस की आहट को अपनी कब्र खोदते हुए सुन रहे हैं, जबकि पेरिस और बर्लिन के गलियारों में मास्को के साथ एक 'कामकाजी संबंध' बनाने की सुगबुगाहट अभी भी जारी है। नाटो के लिए रूस एक 'अस्तित्वगत खतरा' है या एक 'व्यवसाय का साथी'? इस बुनियादी सवाल पर गठबंधन के 32 सदस्य एकमत नहीं हैं।

वहीं, दूसरी ओर वाशिंगटन की नजरें अब चीन की ओर मुड़ चुकी हैं, जिसे वह 'सिस्टमैटिक चैलेंजर' मानता है। लेकिन यहां फिर वही रार है—यूरोप चीन के साथ अपने व्यापारिक रिश्तों को दांव पर लगाने को तैयार नहीं है। और तो और, दक्षिणी यूरोप के सदस्य, जैसे इटली और ग्रीस, अपनी ही दुनिया में व्यस्त हैं। उनके लिए रूस या चीन कोई खतरा नहीं, बल्कि भूमध्य सागर से आने वाला मानवीय प्रवासन और उत्तरी अफ्रीका से फैलता आतंकवाद असली दुश्मन है। एक ऐसा गठबंधन, जो अपने दुश्मन को ही परिभाषित नहीं कर सकता, वह भला युद्ध के मैदान में क्या खाक लड़ेगा? नाटो आज उसी दुविधा में है, जहां वह हर दिशा में दौड़ने की कोशिश कर रहा है और अंततः कहीं भी नहीं पहुंच रहा है।

वित्तीय बोझ और 'फ्री-राइडर' का अभिशाप

पिछले कई दशकों से अमेरिका नाटो का वह 'बैंकर' रहा है, जिसने अपनी जीडीपी के एक बड़े हिस्से को यूरोप की सुरक्षा के लिए झोंका है। लेकिन अब वाशिंगटन की थकान साफ झलक रही है। अमेरिका, जो कभी खुद को 'स्वतंत्र दुनिया का रक्षक' कहता था, अब यूरोपीय देशों से यह सवाल पूछ रहा है कि—'तुम अपनी सुरक्षा के लिए कब तक मेरे भरोसे रहोगे?'

नाटो के चार्टर के अनुसार, प्रत्येक सदस्य देश को अपनी जीडीपी का कम से कम 2% रक्षा पर खर्च करना अनिवार्य है। लेकिन 2026 के आंकड़ों को देखें तो स्थिति हास्यास्पद है। नाटो के एक-तिहाई से भी कम सदस्य इस लक्ष्य को पूरा कर पा रहे हैं। बाकी सदस्य 'फ्री-राइडर' की तरह अमेरिकी रक्षा छाते के नीचे आराम कर रहे हैं। आर्थिक मंदी और कल्याणकारी योजनाओं के दबाव ने यूरोपीय सरकारों के पैरों में बेड़ियां डाल दी हैं। वे अपने ही नागरिकों को जवाब देने के लिए विवश हैं, और ऐसे में सैन्य बजट को प्राथमिकता देना राजनीतिक आत्महत्या जैसा है। परिणाम यह है कि नाटो की सैन्य तैयारी अब केवल कागजों पर मौजूद एक 'पावरपॉइंट प्रेजेंटेशन' बनकर रह गई है। कागजों पर नाटो एक शेर है, लेकिन वास्तविक युद्ध के मैदान में वह अपनी ही आर्थिक कमजोरियों का कैदी है।

नाटो के चार्टर के अनुसार, प्रत्येक सदस्य देश को अपनी जीडीपी का कम से कम 2% रक्षा पर खर्च करना अनिवार्य है। लेकिन 2026 के आंकड़ों को देखें तो स्थिति हास्यास्पद है। नाटो के एक-तिहाई से भी कम सदस्य इस लक्ष्य को पूरा कर पा रहे हैं। बाकी सदस्य 'फ्री-राइडर' की तरह अमेरिकी रक्षा छाते के नीचे आराम कर रहे हैं।

भीतर बैठे विद्रोही

नाटो की एकता का ढोल तब पूरी तरह फट गया जब तुर्की और हंगरी जैसे देशों ने संगठन की साख को खिलौना बना लिया। गठबंधन का कोई भी बड़ा निर्णय 'सर्वसम्मति' से होना चाहिए, और यही इस संगठन का सबसे बड़ा कमजोर कड़ी है। जब भी नाटो कोई कड़ा फैसला लेना चाहता है, हंगरी का वीटो या तुर्की की मोलभाव वाली कूटनीति उसके पैरों में आकर गिरती है। स्वीडन और फिनलैंड के प्रवेश में जो देरी की गई, उसने पूरी दुनिया के सामने यह साबित कर दिया कि नाटो के भीतर ही दुश्मन बैठे हैं, जो संगठन की एकता को अपने निजी हितों के लिए बंधक बनाए हुए हैं।

तुर्की और हंगरी का रूस के प्रति रुख यह दर्शाता है कि नाटो अब एक 'सुरक्षा परिवार' नहीं, बल्कि एक 'वैचारिक भट्टी' बन चुका है, जहाँ हर सदस्य अपनी रोटी सेंकने में व्यस्त है। सर्वसम्मति के नाम पर यह गठबंधन अब पंगु हो चुका है। यह एक ऐसी मशीन है जिसका गियर अगर एक भी सदस्य बदल दे, तो पूरी मशीन जाम हो जाती है। नाटो का मृतप्राय स्वरूप यहीं से

आता है—वह आगे बढ़ने की कोशिश तो करता है, लेकिन उसके अपने सदस्य उसे पीछे खींचने के लिए काफी हैं।

यूरोपीय स्वायत्तता का सपना बनाम नाटो की निर्भरता

फ्रांस के राष्ट्रपति और अन्य यूरोपीय चिंतक अब 'यूरोपीय सेना' की वकालत कर रहे हैं। उनका मानना है कि यूरोप को अपनी सुरक्षा के लिए अमेरिका पर निर्भर रहना छोड़ देना चाहिए। यह एक सुंदर सपना है, लेकिन हकीकत में यह केवल एक दिवास्वप्न है। यूरोपीय सैन्य तकनीक और अमेरिकी सैन्य तकनीक के बीच की खाई अब इतनी गहरी हो गई है कि उनका 'ज्वाइंट ऑपरेशन' करना लगभग असंभव हो गया है।

यूरोप अपनी रक्षा कंपनियों को बढ़ावा देने की कोशिश कर रहा है, लेकिन यह कोशिश अमेरिकी रक्षा उद्योग के हितों से टकराती है। अमेरिका अब अपने हथियार बाजार में किसी को भी भागीदार नहीं बनने देना चाहता। यह दोहरी मार है—यूरोप न तो अपनी सेना बना पा रहा है, न ही नाटो पर भरोसा कर पा रहा है। फ्रांस की 'रणनीतिक स्वायत्तता' की जिद केवल नाटो के ताबूत में आखिरी कील ठोकने का काम कर रही है। नाटो के टैंक और मिसाइलें आज के डिजिटल और हाइब्रिड युद्ध के युग में वैसे ही अप्रभावी हैं, जैसे तलवार लेकर किसी परमाणु युद्ध में उतरना।

डिजिटल और हाइब्रिड युद्ध

नाटो का पूरा ढांचा 20वीं सदी के उस पारंपरिक युद्ध के लिए बना था, जहाँ टैंकों का काफिला सीमा पार करता था। लेकिन 2026 में युद्ध के मैदान बदल चुके हैं। अब युद्ध साइबरस्पेस में लड़ा जाता है, एआई के जरिए चुनावों को प्रभावित किया जाता है और अंतरिक्ष में उपग्रहों को निशाना बनाया जाता है। नाटो के पास इन नई चुनौतियों से लड़ने का कोई व्यापक ढांचा नहीं है। क्या नाटो के पास कोई ऐसा सिस्टम है जो किसी सदस्य देश के पूरे पावर ग्रिड को साइबर हमले से बचा सके? नहीं। क्या नाटो अंतरिक्ष में हो रहे हमलों को रोकने के लिए तैयार है? नहीं।

यह गठबंधन अभी भी उन पुराने नक्शों को देख रहा है जो अब बदल चुके हैं। ज़ोम्बी की तरह, यह पुरानी आदतों को दोहरा रहा है—जैसे कि एक मृत सैनिक अपनी बंदूक चला रहा हो, भले ही उसे पता न हो कि दुश्मन कहाँ है।

नवीनीकरण या अंतिम संस्कार?

2026 नाटो के लिए वह अंतिम चेतावनी है, जहां उसे यह तय करना होगा कि वह एक प्रासंगिक रक्षक है या केवल इतिहास का एक जीर्ण-शीर्ण अवशेष। यदि नाटो ने खुद को भविष्य के युद्धों के अनुसार नहीं ढाला, तो इसका अंत एक ऐसे संगठन के रूप में होगा जिसे दुनिया याद तो रखेगी, लेकिन जिसकी जरूरत किसी को नहीं होगी। एक मृतप्राय का चलना तब तक चलता है जब तक उसका शरीर सड़कर गिर न जाए। नाटो का शरीर अब सड़ने लगा है।

इसकी सैन्य मशीनरी का शोर केवल एक मृतप्राय संगठन की आखिरी चीख है। दुनिया बदल चुकी है, और नाटो के पास अब केवल दो रास्ते हैं: या तो वह खुद को पूरी तरह से 'रिबूट' करे, एआई और साइबर वारफेयर के युग में अपना अस्तित्व पुनर्जीवित करे, या फिर वह चुपचाप इतिहास के कचरे के डिब्बे में अपना स्थान सुरक्षित कर ले। एक ऐसा गठबंधन जिसे सुरक्षा प्रदान करने की क्षमता नहीं है, और न ही वैश्विक स्थिरता बनाए रखने का साहस, वह केवल नाम का रक्षक है। यह गठबंधन अब अपने अंत की दहलीज पर खड़ा है, और इसकी अंतिम विदाई का समय शायद अब बहुत करीब है। ●

A platform dedicated to geopolitical and global affairs, as well as analysis related to India and Indianness

CULT CURRENT

WE MAKE VIEWS

Join the YouTube channel ›

रॉकेट फोर्स युद्ध का नया व्याकरण

आधुनिक युद्ध अब सीमाओं की टकराहट नहीं, बल्कि तकनीक, गति और सटीकता के उस अदृश्य संग्राम में बदल चुका है, जहाँ निर्णय पलों में होते हैं। ऐसे समय में रॉकेट और मिसाइल का एकीकरण भारत की रणनीतिक अनिवार्यता बन चुका है।

संजय श्रीवास्तव

कभी युद्ध रणभूमि पर आमने-सामने खड़ी सेनाओं का टकराव होता था—धूल, धुआँ और ध्वनि का एक जीवंत दृश्य। लेकिन इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में युद्ध का यह दृश्य लगभग विलुप्त हो चुका है। अब युद्ध किसी सीमा रेखा पर नहीं, बल्कि उपग्रहों, सेंसरों, एल्गोरिद्म और कृत्रिम मेधा के अदृश्य जाल में लड़ा जा रहा है।

यह वह युग है जहाँ 'किल चेन'—यानी लक्ष्य की पहचान से लेकर उसके विनाश तक की पूरी प्रक्रिया—सेकंडों में पूरी हो जाती है। निर्णय लेने की गति ही अब जीत और हार के बीच की रेखा बन गई है। इस नए युद्धशास्त्र में जो पहले देखेगा, पहले समझेगा और पहले प्रहार करेगा—वही विजेता होगा।

ऐसे परिवेश में रॉकेट और मिसाइल अब केवल हथियार नहीं, बल्कि उस रणनीतिक तंत्रिका तंत्र के मुख्य अंग बन चुके हैं, जो युद्ध के पूरे शरीर को संचालित करता है।

एकीकरण की आवश्यकता: विखंडन से समेकन तक

भारत की सैन्य संरचना में अब तक रॉकेट और मिसाइल क्षमताएँ विभिन्न इकाइयों में विभाजित रही हैं—कोर ऑफ आर्टिलरी, सामरिक बल कमांड और अन्य विशेष इकाइयाँ।

यह व्यवस्था उस समय तक पर्याप्त थी, जब युद्ध अपेक्षाकृत धीमी गति और स्पष्ट सीमाओं के भीतर लड़ा जाता था।

लेकिन आज की युद्धभूमि 'रियल टाइम' है। यहाँ विखंडन का अर्थ है—विलंब, और विलंब का अर्थ है—पराजय। इसी कारण 'इंटीग्रेटेड रॉकेट फोर्स' की अवधारणा केवल एक संगठनात्मक सुधार नहीं, बल्कि एक रणनीतिक क्रांति है।

यह एकीकरण भारत की बिखरी हुई मारक क्षमताओं को एकीकृत कर उन्हें 'सिनर्जी' में बदल देगा—जहाँ रॉकेट की तीव्रता, मिसाइल की सटीकता और ड्रोन की लचीलापन मिलकर एक ऐसी शक्ति का निर्माण करेंगे, जो दुश्मन को प्रतिक्रिया का अवसर ही नहीं देगी।

चीन की बढ़त: ड्रैगन की 'फायरपावर'

यदि आधुनिक युद्ध के इस नए व्याकरण को किसी देश ने सबसे पहले समझा, तो वह चीन है। 2015 में स्थापित 'पीएलए रॉकेट फोर्स' केवल एक सैन्य इकाई नहीं, बल्कि चीन की रणनीतिक सोच का प्रतीक है।

चीन ने न केवल अपनी मिसाइल क्षमताओं को एकीकृत किया, बल्कि उन्हें सैन्य एआई और 'किल चेन' के साथ जोड़कर एक ऐसा तंत्र विकसित किया, जो लगभग स्वचालित युद्ध संचालन में सक्षम

है। हाइपरसोनिक मिसाइलों से लेकर एंटी-एक्सेस/एरिया डिनायल (A2/AD) रणनीतियों तक, चीन ने युद्ध के हर आयाम में बढ़त हासिल करने का प्रयास किया है।

उसका रक्षा बजट, जो इस क्षेत्र में अमेरिका से भी कई गुना अधिक है, इस बात का संकेत है कि वह भविष्य के युद्ध को केवल लड़ना नहीं, बल्कि नियंत्रित करना चाहता है।

पाकिस्तान का समीकरण: द्विमुखी चुनौती

भारत के लिए चुनौती केवल चीन तक सीमित नहीं है। पाकिस्तान ने भी पिछले कुछ वर्षों में अपनी 'आर्मी रॉकेट फोर्स' को तेजी से विकसित किया है। फतेह श्रृंखला की मिसाइलें और रॉकेट सिस्टम अब भारत के लिए एक वास्तविक खतरा बन चुके हैं।

यदि चीन और पाकिस्तान की क्षमताएँ एक साथ सक्रिय होती हैं, तो यह भारत के लिए एक 'द्विमुखी दबाव' की स्थिति उत्पन्न कर सकती है—उत्तर और पश्चिम, दोनों दिशाओं से।

यही वह परिदृश्य है, जिसने भारत को अपनी रक्षा रणनीति को पुनःपरिभाषित करने के लिए बाध्य किया है।

भविष्य का युद्ध: 'स्मार्ट' विनाश का युग

आधुनिक मिसाइलें अब 'ब्लंट फोर्स' नहीं रहीं। वे अब 'सर्जिकल प्रहार' की क्षमता से लैस हैं। जहाँ पहले एक शहर को नष्ट करने के लिए बमबारी की जाती थी, वहीं अब एक विशेष लक्ष्य—एक रनवे, एक कमांड सेंटर या एक मोबाइल लॉन्चर—को सटीकता से ध्वस्त किया जा सकता है।

इससे भी आगे, 'स्वार्म वॉरफेयर' का युग तेजी से आकार ले रहा है। दर्जनों या सैकड़ों ड्रोन और मिसाइलें एक साथ, एक नेटवर्क के रूप में, लक्ष्य पर आक्रमण करेंगी। वे आपस में संवाद करेंगी, निर्णय लेंगी और आवश्यकता पड़ने पर अपने लक्ष्य बदलेंगी।

यह युद्ध अब केवल शक्ति का नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता का खेल बन चुका है।

भारत की रणनीतिक छलांग: 'प्रतिक्रिया' से 'प्रहार' तक

इंटीग्रेटेड रॉकेट फोर्स भारत को एक महत्वपूर्ण रणनीतिक लाभ प्रदान कर सकती है। यह उसे केवल प्रतिक्रिया देने वाली शक्ति से एक 'प्रारंभिक प्रहार' करने वाली शक्ति में बदल सकती है।

कमांड चेन के संक्षिप्त होने से निर्णय लेने की गति बढ़ेगी। विभिन्न हथियार प्रणालियों के बीच बेहतर समन्वय होगा। और सबसे महत्वपूर्ण—भारत अपनी सीमाओं के भीतर से ही दुश्मन के महत्वपूर्ण ठिकानों को सटीकता से निशाना बना सकेगा।

यह क्षमता भारत को अपने परमाणु हथियारों को 'डिटरेंस' के रूप में सुरक्षित रखते हुए पारंपरिक संघर्षों में बढ़त दिला सकती है।

एआई और 'किल चेन': युद्ध का मस्तिष्क

भविष्य का युद्ध केवल हथियारों का नहीं, बल्कि डेटा और एल्गोरिद्म का होगा। एआई समर्थित 'किल चेन'—जहाँ लक्ष्य की पहचान, विश्लेषण और विनाश एक ही तंत्र के भीतर होते हैं—इस युद्ध का मस्तिष्क होगी। भारत यदि इस क्षेत्र में पीछे रह जाता है, तो उसकी मारक क्षमता भी सीमित हो जाएगी। इसलिए इंटीग्रेटेड रॉकेट फोर्स को केवल हार्डवेयर के रूप में नहीं, बल्कि एक 'स्मार्ट सिस्टम' के रूप में विकसित करना आवश्यक है।

रणनीतिक संतुलन और वैश्विक संदेश

भारत का यह कदम केवल सैन्य सुधार नहीं, बल्कि एक स्पष्ट वैश्विक संदेश भी है—कि वह अब केवल एक रक्षात्मक शक्ति नहीं, बल्कि एक सक्रिय रणनीतिक खिलाड़ी है।

यह दक्षिण एशिया में शक्ति संतुलन को पुनःपरिभाषित कर सकता है और भारत को 'नेट सिक्योरिटी प्रोवाइडर' की भूमिका में स्थापित कर सकता है।

युद्ध का नया धर्म

युद्ध का स्वरूप बदल चुका है, और इसके साथ ही उसकी नैतिकता और रणनीति भी। अब यह केवल साहस का नहीं, बल्कि गति, सटीकता और बुद्धिमत्ता का खेल है।

रॉकेट और मिसाइल का यह एकीकरण भारत के लिए केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि अस्तित्व की अनिवार्यता है। यदि भारत इस परिवर्तन को समय रहते पूरी तरह आत्मसात कर लेता है, तो वह न केवल अपनी सीमाओं की रक्षा कर पाएगा, बल्कि वैश्विक शक्ति संतुलन में भी अपनी निर्णायक भूमिका सुनिश्चित कर सकेगा।

क्योंकि आधुनिक युद्ध में एक ही नियम है—जो समय से पहले तैयार है, वही विजेता है। ●

किल चेन

भविष्य के युद्ध का अदृश्य तंत्र

आधुनिक युद्ध का स्वरूप अब मूलतः बदल चुका है। शक्ति का केंद्र केवल हथियारों के भंडार में नहीं, बल्कि उस 'किल चेन' में निहित है, जो लक्ष्य की पहचान से लेकर उसके विनाश तक की संपूर्ण प्रक्रिया को एकीकृत करती है। यह एक ऐसा बहुस्तरीय तंत्र है, जिसमें अंतरिक्ष, वायु, समुद्र और भूमि—सभी आयाम एक साथ जुड़कर कार्य करते हैं।

इस प्रणाली की पहली कड़ी होती है—निगरानी और पहचान। उपग्रह, ड्रोन, रडार और ग्राउंड सेंसर दुश्मन की गतिविधियों का सूक्ष्म डेटा एकत्र करते हैं। दूसरी कड़ी में कृत्रिम मेधा और उन्नत विश्लेषण प्रणाली इन आंकड़ों को तत्काल संसाधित कर लक्ष्य की प्राथमिकता और खतरे का स्तर निर्धारित करती है। तीसरी और अंतिम कड़ी है—प्रहार, जहाँ रॉकेट, मिसाइल, या स्वायत्त ड्रोन सटीकता के साथ लक्ष्य को नष्ट करते हैं।

इस पूरी प्रक्रिया की सबसे बड़ी शक्ति उसकी गति और समन्वय है। 'देखो-समझो-मारो' की पारंपरिक अवधारणा अब 'तुरंत पहचानो और तत्काल प्रहार करो' में बदल चुकी है। यही कारण है कि आधुनिक युद्ध 'नेटवर्क-सेंट्रिक' और 'डाटा-संचालित' हो गया है, जहाँ सूचना ही सबसे बड़ा हथियार बन चुकी है।

आज 'स्वार्म टेक्नोलॉजी' इस किल चेन को और अधिक घातक बना रही है। दर्जनों ड्रोन और मिसाइलें आपस में संवाद करते हुए लक्ष्य पर समन्वित हमला कर सकती हैं। यदि एक इकाई नष्ट होती है, तो दूसरी स्वतः उसका स्थान ले लेती है—युद्ध अब मशीनों के बीच भी लड़ा जा रहा है।

चीन और अमेरिका इस क्षेत्र में पहले ही बड़ी बढ़त बना चुके हैं, जबकि भारत भी अपने एकीकृत रॉकेट-मिसाइल ढांचे के माध्यम से इस दिशा में निर्णायक कदम बढ़ा रहा है। आने वाले समय में युद्ध वही जीतेगा, जिसकी 'किल चेन' सबसे तेज, सबसे सटीक और सबसे बुद्धिमान होगी—क्योंकि अब युद्धक्षेत्र सीमाओं में नहीं, बल्कि डेटा और निर्णय की गति में तय होगा। ●

कृति का गेम चेंज!

हीरोइन या 'लेडी बॉस'

बॉलीवुड की चमकती दुनिया में कृति सेनन अब सिर्फ कैमरे के सामने मुस्कुराने तक सीमित नहीं रहना चाहतीं—वह अब कैमरे के पीछे का खेल भी अपने हाथ में लेने के मूड में हैं। खबरें गरमा रही हैं कि कृति अपने प्रोडक्शन बैनर को फुल स्पीड में आगे बढ़ा रही हैं और अब उनकी नजर सिर्फ रोल्स पर नहीं, पूरी कहानी पर है।

सूत्रों की मानें तो कृति अब स्क्रिप्ट सुनते वक्त एक्ट्रेस कम, प्रोड्यूसर ज्यादा नजर आती हैं। नए चेहरे, हटकर विषय और कंटेंट-ड्रिवन सिनेमा—यही उनका नया फॉर्मूला है। मतलब साफ है, कृति अब 'ग्लैमर गर्ल' के टैग से बाहर निकलकर इंडस्ट्री की 'डिसीजन मेकर' बनने की तैयारी में हैं।

दिलचस्प मोड़ यह है कि उनका यह कदम सिर्फ करियर शिफ्ट नहीं, बल्कि एक बड़ा दांव है—जहां वह खुद अपनी फिल्मों की किस्मत लिखेंगी। बॉलीवुड में अब कृति का रोल बदल रहा है और यह बदलाव आने वाले समय में कई समीकरण हिला सकता है!

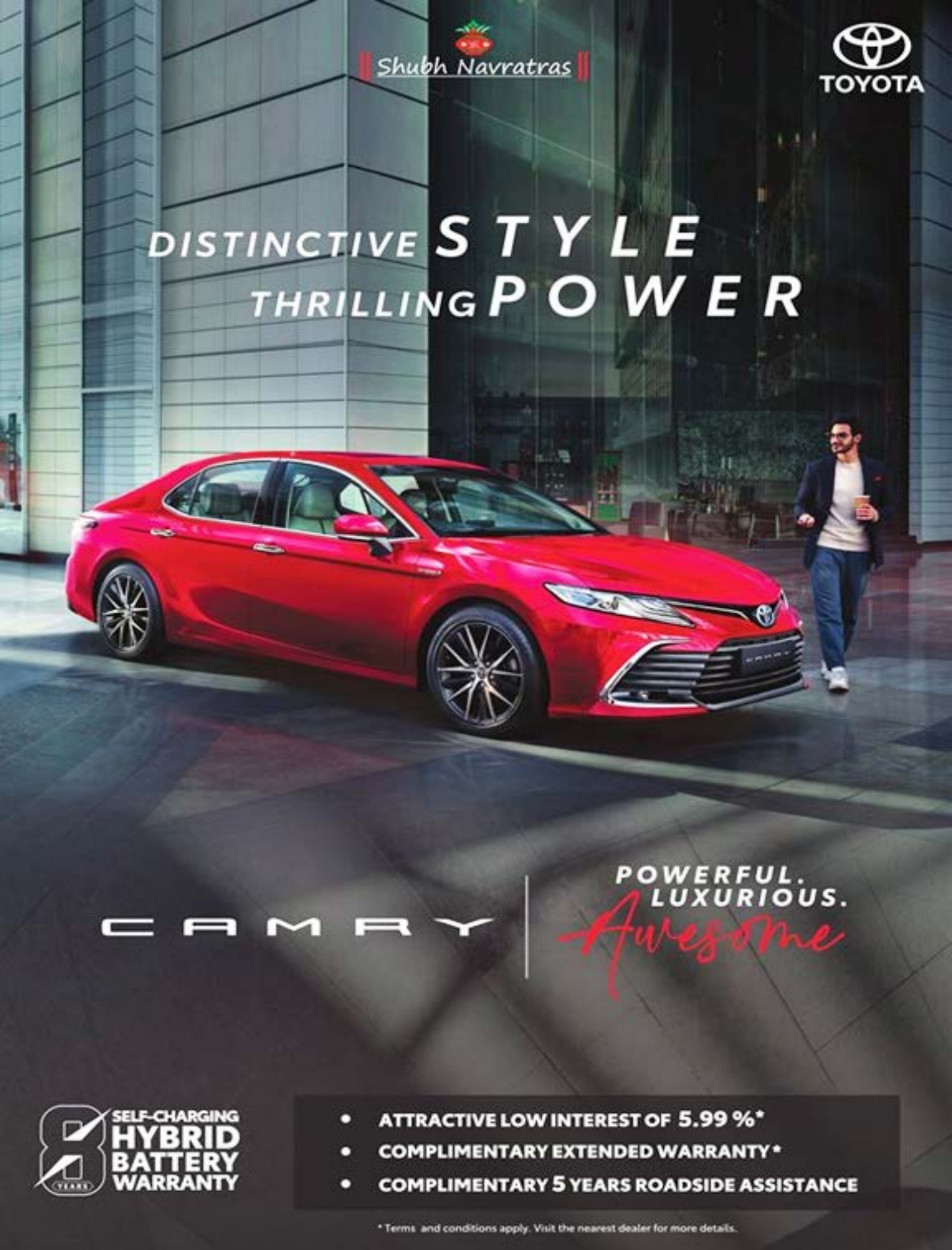

Shubh Navratras
TOYOTA
DISTINCTIVE STYLE
THRILLING POWER
CAMRY
POWERFUL.
LUXURIOUS.
Awesome
SELF-CHARGING
HYBRID
BATTERY
WARRANTY
8 YEARS
• ATTRACTIVE LOW INTEREST OF 5.99 %*
• COMPLIMENTARY EXTENDED WARRANTY*
• COMPLIMENTARY 5 YEARS ROADSIDE ASSISTANCE
* Terms and conditions apply. Visit the nearest dealer for more details.

RNI TITLE CODE : DELENG19447

Experience it. Look at it from all angles. Check out the contours, the craftsmanship, the perfection of form and the waterfall...

Glamour ▪ Convenience ▪ Technology

MARC®
Bathing Luxury

MARC SANITATION PVT. LTD.

A-2, S.M.A. Co-op. Industrial Estate, G.T. Kamal Road, Delhi-110 033
Ph: 27691410, Fax: 011-27691445/27692295 E-mail: info@marcindia.com Website : www.marcindia.com